UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180710

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H81·6 | T12M Accession No H2451

Author ठाकुर, रविन्द्रनाथ,

Title [illegible] बालकुमार [illegible] 1957

This book should be returned on or before the date last marked below

गीतांजलि

(कवि के कुछ उत्कृष्ट गीतों का हिन्दी अनुवाद)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अनुवादक
सत्यकाम विद्यालंकार

चित्रकार
पनीषी दे

राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई इलाहाबाद पटना मद्रास

प्रकाशक :
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद, पटना, मद्रास

प्रथम संस्करण, १९५७

मूल्य दस रुपये

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ
नवीन प्रेस, दिल्ली

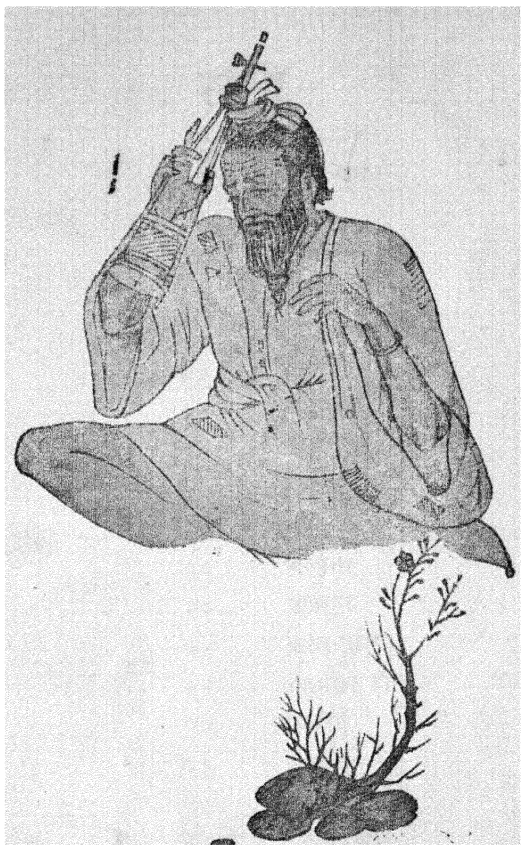

सूची

आवेदन	१	गहन वचन	३८
बिखरे फूल	४	दुर्बोध	३९
अपरिचित यात्री	६	गीतों का अर्थ	४१
घाट पर	७	मानस-प्रतिमा	४२
शुभ क्षण	९	हृदय-आकाश	४३
भ्रष्ट लग्न	११	कस्तूरी-मृग	४४
विवशता	१३	प्रणय-प्रश्न	४५
अतिथि	१५	मार्जना	४७
हृदय यमुना	१७	अनुरोध	४९
प्यासी	१९	कौशल	५०
कवि का वय	२०	भर्त्सना	५१
पथे	२२	उत्सृष्ट	५२
सरल प्रेम	२४	क्षति-पूर्ति	५३
एक गाँव	२६	किसका दोष	५४
एक दृष्टि	२८	विदाई	५५
प्रकरुण	२९	भीरुता	५६
द्वार पर	३०	तापस	५८
आंचल का स्पर्श	३१	लोक-लाज	५९
लीला	३२	प्रेम-पथ	६१
एकान्त	३३	अश्रुकण	६२
दो पक्षी	३४	परिवर्तन	६३
हृदय-भार	३६	बन्दी	६५
नम्र याचक	३७	हृदय-धन	६६

पूर्ण मिलन	६७	दिन शेष	८९
दो बहनें	६८	पारस-मणि	९१
आहत	६९	दुःसमय	९५
दुराकांक्षा	७०	ऐश्वर्य	९७
भर्त्सना	७१	चिरायमना	९८
विरह	७३	कृतार्थ	९९
किंधर	७५	मन्दिर	१०१
स्थायी अस्थायी	७६	माता वसुन्धरा	१०३
व्यक्त प्रेम	७७	झरना	१०५
नारी का दान	७९	प्रस्तर-मूर्ति	१०७
कस्तूरी-मृग	८०	दीदी	१०८
विदाई-काल	८१	भयभीत	११०
स्वप्न	८३	वैराग्य	१११
मानसी	८५	सुख-दुःख	११२
कागज़ की नाव	८६	मरण-खेल	११३
अशेष	८७	शतवर्ष उपरान्त	११५

आवेदन

सेवक : जय हो राजरानी, राज राजेश्वरी ! सेवक पुरस्कार की आशा से द्वार पर आया है।

रानी : सेवक ! राजसभा विसर्जित हो चुकी, मेरे अन्य सेवक यथायोग्य कार्य-भार के साथ सगर्व जय-शंख बजाते विदा हो चुके। तुम निशान्त में चन्द्रोदय के समान अब व्यर्थ ही आये। कहो क्या आवेदन है ?

सेवक : सब समाप्त होने पर ही मुझ सर्वाधम दास का योग्य अवसर है महारानी ! जब सभी जन परितृप्त और पूर्ण आनन्द के साथ घर लौट गए उसी समय में इस निर्जन सभा में एकाकी आसीन रानी के चरणों में आकर उस उच्छिष्ट भिक्षा को माँगने आया हूँ जो अन्तिम सेवक के ही भाग में आ सकती है महारानी !

रानी : अबोध भिक्षुक ! इस असमय तुझे क्या मिलेगा ?

सेवक : मिलेगा रानी, अवश्य मिलेगा। तुम्हारे पास नाना कार्य, नाना अधिकारसम्पन्न सेवक हैं, किन्तु एक कार्य ऐसा है जो किसी राज्याधिकारी को रुचिकर नहीं। मुझे वही दे दो; मैं तुम्हारे उपवन का मालाकार बनूँगा।

रानी : मालाकार ?

सेवक : हाँ, महारानी, क्षुद्र मालाकार। मैं अन्य सब कार्यों से अवकाश पा लूँगा। अपना मुकुट तुम्हारे चरणों पर रख दूँगा। अपना धनुष-बाण धूल में फेंक दूँगा। जितने ऊँचे आसन हैं सब मुझसे छीन लो रानी, मुझे देश-देशान्तरों में

दिग्विजय के लिए मत भेजो, सम्मानपूर्ण राजकीय कार्यों के लिए दूर देशों की राजसभाओं का दूत मत बनाओ। तुम्हारे अधिकार में असीम विस्तृत नगर हैं। नगरों के मंदिर-शिखर और हर्म्यचूड़ दिगन्त भेदन कर रहे हैं। वहाँ नाना सेवक हैं, अनगिन सैनिक और असंख्य प्रहरी उनकी रक्षा कर रहे हैं। मुझे वहाँ न भेजो। मैं तुम्हारी सेवा में रहूँगा। जहाँ निर्जन गिरिशिखर पर तुम्हारा तुषार धवल, चन्द्र-कान्त मणिमय अनिन्द्य निर्मल राजप्रासाद है उसके दक्षिण ओर विजन में मंजरित इन्दु वल्लरी वितानों में निभृत कुंज है, वहीं एकान्त में मैं अपना समय काटूँगा। हे एकाकिनी महारानी ! मैं तुम्हारे ही उपवन का मालाकार बनूँगा।

रानी : हे कर्मभीरु प्रमादप्रिय सेवक ! मालाकार बनकर क्या करोगे तुम ?

सेवक : तुम्हारे राजकाज के कामों से अतिरिक्त समय की सेवा के सब कार्य महारानी ! वसन्त और शरत् काल की अरुणोदय वेला में अरण्य पथ की जो वन-वीथिका तुम्हारे अलस तप्त चरणों से मुरझाकर विसर्जित हो जायगी मैं उसे पुनः नवीन कर दूँगा। प्रत्यह तुम्हारे चरणों के पुष्पाक्षरों से स्तुति-गीत लिखूँगा। तुम्हारे चरण-स्पर्श से पुलकित तृणपुंज उषाकाल में तुम्हारा स्वागत करेंगे। सन्ध्या समय जिस मंजु-मालिका को तुम वेणी में गूँथती हो, उसे अपने हाथों स्वर्ण-पात्र में सजाकर तुम्हारे सम्मुख निःशब्द, नतमुख भेंट करूँगा। उस कुमुद-भरे सरसी-कूल पर बैठकर, जहाँ सप्तपर्ण के तरु-तले मालती की शाखाएँ झूलती हैं और जहाँ कौतूहल-भरा चाँद पत्तों के झुरमुट में से तुम्हारे ललाट, वक्ष और वसनों को सहस्र

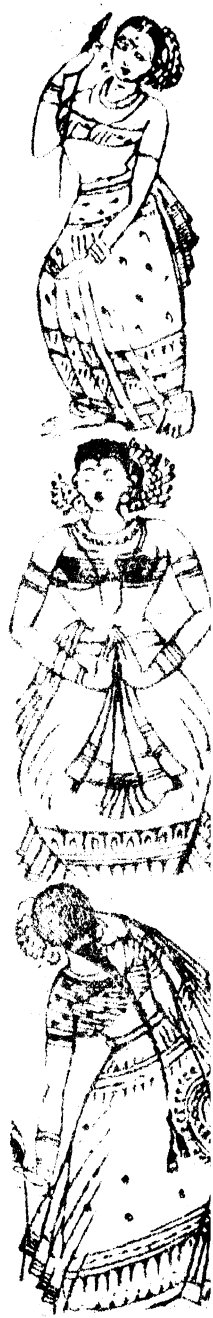

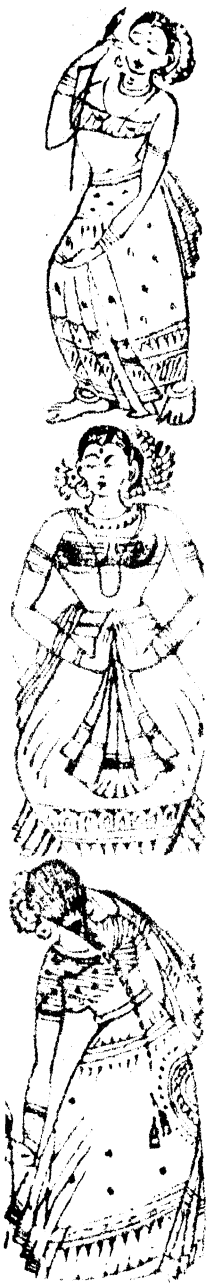

चुम्बनों द्वारा आलिंगन करता है और जहाँ वासना-विभोर वन-सुरभि मृदु मंद समीर की तरह उठती रहती है, मैं तुम्हारे लिए वेणी बनाऊँगा और तुम्हारे शय्या शिरोदेश पर दीपक में अनिमेष गन्ध तेल भरता रहूँगा और शेफाली के फूलों से तुम्हारे वासन्ती वस्त्र रँगूँगा। इसके अतिरिक्त तुम्हारी चौकी पर नवीन भावना नवीन रूपों में प्रत्यह कुंकुम, चन्दन का आलिम्पन करूँगा। मैं तुम्हारे निकुंजों का क्षुद्र अनुचर, क्षुद्र मालाकार बनूँगा रानी !

रानी : सेवक, इन सेवाओं के मूल्य में तुम्हें कौनसे पुरस्कार की इच्छा है ?

सेवक : प्रत्यह प्रभात के फूलों का कंकन बनाकर जब मैं आऊँ, तब अनखिली कलिका-सी तुम्हारी कोमलक लाई को हाथों में लेकर कंकन पहना सकूँ, यही पुरस्कार है रानी। और प्रति सन्ध्याकाल अशोक पुष्प की रक्तकान्त पंखड़ियों के लाल रंग से तुम्हारे अंगुलि प्रान्तों को लेशमात्र रेणु से रंग सकूँ और यदि वहाँ कुछ रेणु-कण शेष रह गए हों तो उनको लगाकर पोंछ सकूँ, यही पुरस्कार चाहता हूँ रानी !

रानी : भृत्य, तुम्हारा आवेदन मुझे स्वीकार है, मेरे पास अनेक मन्त्री हैं, अपार सैन्य है, अनेक सेनापति हैं जो विविध पदों पर कार्य कर रहे हैं। किन्तु तुम मेरे स्वेच्छा बन्दी दास होगे जो ख्यातिहीन और कर्महीन रहते हैं। आज से राज्य-सभा के बाहरी भाग में रहो सेवक, अब से तुम हमारे उपवन के मालाकार हो।

बिखरे फूल

प्रभात काल का तरुण रवि उषा की स्तुति-हेतु स्वर्ण-पत्र सजाकर लाया। उस समय असीम नीला जल हर्ष से सिहर रहा था; किरण-तूलिका गगन-भाल पर रंगावलि अंकित कर रही थी।

मछियारे सागर-तट पर बैठकर जाल बुन रहे थे। थोड़ी देर में वह मत्स्य-जाल फैला दिया गया। न जाने कैसे समुद्र की अथाह गहराई से विविध विलक्षण रत्न-समुच्चय उस जाल में सिमटकर ऊपर आ गया। उस रत्न-राशि के कुछ रत्न स्मित-हास्य समान उज्ज्वल थे और कुछ अश्रुकण-से बुझे हुए थे और कुछ थे सलज्ज नव-वधु के आरक्त कपोलों के समान गुलाबी। समय बीतता गया। सूर्य ने पूर्व दिशा से प्रस्थान प्रारम्भ किया। मध्यान्ह का मार्तण्ड चमकने लगा। सन्ध्या आई। गोधूलि से आकाश धूसर हो गया। मछियारे घरों को लौट चले।

मछुआ दिन-भर का बोझ लिये घर आया। आकाश पर चाँद उठ रहा था। ग्राम-पथ निर्जन था। सब आँखें बन्द करके सो रहे थे। विरही पक्षी कातर स्वर से प्रेमी की पुकार कर रहा था।

मत्स्य-जाल में सिमटे रत्नों को एकटक देखने के बाद उसने कहा : "यह धन कैसा ? मेरे लिए इसका क्या प्रयोजन ? इसे पाने को मैंने किसी से युद्ध नहीं किया और न मैंने मूल्य देकर हाट से लिया है; इनका आदर कौन करेगा ?"

रात-भर उन रत्नों को वह रास्ते पर बिखेरता रहा।
प्रभात के मार्ग से जाने वाले पथिकों ने उन बिखरे फूलों को चुना और दूर देशों में पहुँचा दिया।

अपरिचित यात्री

मैं चंचल हूँ, तृषित हूँ; दूर की लुभावनी वस्तुओं की लिप्सा मेरे मन में सदा जागृत रहती है। मेरी आत्मा अनन्त दूरी के आंचल को छूना चाहती है।

दिन बीतता जाता है। मैं उन्मन-सा वातायन पर बैठा तेरी बाट जोहता रहता हूँ। मेरे मन-प्राण में तेरा स्पर्श पाने की तृषा भरी है।

हे विराट्, तुम दूर से अपनी वंशी बजाते हो। मैं भूल जाता हूँ, सदा भूल जाता हूँ कि व्योमाकाश के अनन्त पथ पर उड़ने के लिए मेरे पास पंख नहीं हैं, मैं उड़ नहीं सकता।

मैं जिज्ञासु हूँ, प्रवासी हूँ। तुम दुर्लभ दुराशा के समान अप्राप्य हो। तुम मुझे कौनसी कथा कहा करते हो, मैं नहीं जानता।

तुम्हारी भाषा तुमसे ही सुनता हूँ। हृदय कहता है वह भी तुम्हारा स्वभाषी है, तुम्हारे इंगितों को पहचानता है।

हे सुदूर ! विपुल सुदूर ! तुम वंशी के स्वर बजाते हो। मैं सदा भूल जाता हूँ कि उन सुन्दर पथ-वीथिकाओं का मुझे कोई ज्ञान नहीं और मेरे पास वहाँ तक पहुँचने का कोई वाहन नहीं।

मैं अपने ही हृदयाकाश में निरुद्देश्य विहार करने वाला यात्री हूँ।

घाट पर

मेरी कुटिया जन-पथ के किनारे बनी थी। व्यापारी अपनी धनधान्य से भरी नौकाएँ मेरी कुटिया के निकट बाँधकर बाज़ार चले जाते थे। स्वेच्छा से वे वहाँ आते, और स्वच्छन्दता से यत्र-तत्र भ्रमण करते थे। मैं कुटी के बाहर बैठे यह सब देखा करता और सारा दिवस ऐसे ही व्यतीत कर देता। उन्हें 'लौट जाओ' कहने का साहस नहीं होता।

दिन-रात अपरिचित आगन्तुकों की आहट से मेरी कुटिया के द्वार गूँजने लगे। मैं पूछ बैठा : "तुम कौन हो ?" सोचता हूँ, क्या मेरा उनसे कोई परिचय न था।

उनमें से कुछ थे जिन्हें मेरी अंगुलियाँ पहचानती थीं, कुछ को मेरी नस-नस में प्रवाहित रक्त पहचानता था और कुछ मेरे स्वप्नों के परिचित भी थे। उन्हें 'लौट जाओ' कहने का साहस नहीं होता था।

एक दिन मैंने उन्हें निकट आने का संकेत किया। कहा : "मेरी कुटिया में आओ; जब चाहे आओ, मैं तुम्हारा स्वागत करूँगा।"

पौ फटने की वेला में मन्दिर की घंटियाँ बजने लगीं। अंजलि में अर्घ्य-नैवेद्य लिये वे आ रहे थे। उनके पैर गुलाब की पंखड़ियों-से रक्तिम थे और उनके मुख उषाकाल की अरुण कान्ति से आभासित। मैंने उनसे अनुरोध किया : "पुष्प-चयन के लिए मेरे पुष्पोद्यान को कृतार्थ करो।"

मध्यान्ह में राजद्वार की दुन्दुभि बज उठी। न मालूम क्यों वे अपना काम-काज छोड़ मेरी कुटिया के समीप

एकत्र हो गए। उनके केशों में गुँथे फूल कुम्हला गए थे और उनकी वीणा का स्वर मन्द हो गया था।

मैंने उन्हें आदर से बुलाकर कहा : "मेरी कुटिया में लगे वृक्ष की घनी छाया में आओ, विश्राम करो।"

रात के पक्षियों का डरावना शब्द कँपा देने वाला था। ऐसे समय न जाने कौन था, जो धीरे-धीरे कुटिया की ओर बढ़ा और द्वार खटखटाने लगा। मैंने अँधेरे में ही उसके मुख को पहचाना, किन्तु मुख से एक शब्द न कहा। आकाश में गहन मौन भरा था। अपने मौन अतिथि को मैं कैसे कहता 'लौट जाओ'। अंधकार की धुँधली-सी झिलमिल में उसका पहचाना-सा मुख देखता रहा, और इसी तरह स्वप्न में पहर-के-पहर बीत गए।

शुभ लग्न

ओ माँ, आज राजकुमार का रथ हमारी कुटी के सन्मुख पथ पर आने वाला है। आज प्रभात में गृहकाज कैसे होगा भला ?

माँ, बता तो, आज कौनसा सिंगार करूँ ? किस फूल की वेणी बाँधूँ और किस रंग के कपड़े पहनूँ ?

माँ, तुझे क्या हो गया ? तू मेरी ओर ऐसे अचरज से आँख फाड़-फाड़कर क्यों देखती है ?

माँ, मैं जानती हूँ जिस वातायन पर खड़ी होऊँगी, उस ओर वह एक बार भी आँख उठाकर नहीं देखेगा। मैं जानती हूँ एक निमेष में ही वह ओझल हो जायगा और दूर, बहुत दूर, चला जायगा।

केवल उसकी वंशी, न जाने किस को लक्ष्य कर, व्याकुल स्वर में बजती रहेगी।

फिर भी माँ, आज राजकुमार हमारे घर के सन्मुख वाले पथ पर आयेगा। उस निमेष-भर के दर्शन के लिए भी मैं सुन्दर वेश क्यों न पहनूँ माँ !

ओ माँ, राजकुमार हमारे घर के सन्मुख पथ पर आकर चला गया। उसके स्वर्ण शिखर छूकर प्रभाती किरणें झिलमिला रही थीं।

घूँघट खोलकर वातायन से मैंने उसे निमेष-भर देखा, और अपना कण्ठहार उतारकर उसकी पथ-धूलि पर बिखेर दिया।

माँ, तुझे क्या हो गया ? अवाक् नयनों से किसे देख रही हो ?

मैं जानती हूँ मेरा वह हार रथ के चक्र में गुँथ गया। चक्र घूमने पर वह घर के सन्मुख वाले पथ की धूल में मिल गया। किसी को यह ज्ञात नहीं कि मैंने क्या दिया और किसे दिया। पथ की धूल ने उस पर परदा डाल दिया।

फिर भी राजकुमार हमारे घर के सन्मुख पथ पर आकर चला गया और मैंने अपने वक्ष का मणि उतारकर न जाने क्यों उसके आगे फेंक दिया।

भ्रष्ट लग्न

शयन-कक्ष के सब प्रदीप बुझ गए थे; प्रभात के कोकिल-स्वर के संग मैं भी शय्या से जाग उठी थी।

अलस चरणों के साथ वातायन पर जाकर मैं बैठ गई। मेरे शिथिल कुन्तलों पर नूतन मालिका के फूल पड़े थे।

ऐसे समय अरुण-धूसर पथ पर एक तरुण पथिक का राजरथ आया। उसके स्वर्ण-मुकुट पर उषा किरणें चमक रही थीं और गले में मुक्तामाल झूल रहा था। सामने आकर वह रुक गया और कातर स्वर में उसने मुझसे पूछा: "वह कहाँ है ? वह कहाँ है ?"

हाय, लाज की मारी मैं कह न सकी कि 'नवीन पथिक, वह मैं ही हूँ, वही मैं हूँ।'

गोधूलि वेला आई; दीपक अभी जले नहीं थे। हाथ में स्वर्ण-पुष्प लिये वातायन पर बैठी मैं कबरी बाँध रही थी।

ऐसे समय सन्ध्या-धूसर पथ पर उस तरुण पथिक का रथ फिर मेरे द्वार के निकट आया। रथ के घोड़े घाम और थकान से चूर थे; उनके मुख से फेन झर रहा था। तरुण के वसन-भूषण धूलि-धूसर हो गए थे।

उसने फिर कातर स्वर में पूछा : "वह कहाँ है ?"

क्लान्त पैरों से द्वार तक जा मैंने द्वार बन्द कर दिये। लाज की मारी मैं फिर भी न कह सकी कि 'थके पथिक, वह मैं ही हूँ, मैं ही हूँ।'

फागुन की रात है; घर के सब दीप जल रहे हैं। दक्षिण की गरम वायु सारे शरीर को तपा रही है।

धूप की चमक से सारा घर धूसर है; अगुरुगन्ध से सारा देह व्याकुल है। मयूरकण्ठी शिथिल पड़ी है; दूर्वा श्यामल आँचल वक्ष पर रखा है।

ऐसे समय विजन राजपथ पर मैं गई और वातायन तले की धूल पर बैठ गई।

तीन पहर रात बीत गई; मैं वहीं अकेली बैठी यही गाती रही : "हताश पथिक, वह मैं ही हूँ, वही मैं हूँ।"

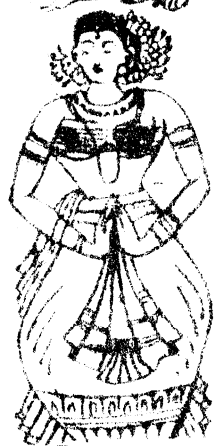

विवशता

जब मैं अकेली नीरव निशीथ में राजपथ पर नव-अभिसार को जाती हूँ, पवन नहीं चलता, सकल पौर-जीवन में मौन छाया होता है।

उस समय केवल मेरे पैरों के नूपुर ही झनझना उठते हैं। उसके अधीर मुखर स्वर को सुन-सुनकर मैं लाज से मर जाती हूँ।

जब मैं उसकी पदचाप सुनने को वातायन में चुपचाप बैठती हूँ तब उस निविड़ निशा में तारे भी अनिमेष रहते हैं, वृक्षों के पत्ते मरमर नहीं करते, यमुना की लहरें भी नहीं हिलतीं, जनहीन पथ अँधेरे में मिल जाता है।

उस समय मेरे अन्तर का मेरा ही हृदय उलस-विलस-कर नाच उठता है और अधीर पागल-सा बन कोलाहल करने लगता है। उसके सब बन्धन टूट जाते हैं।

वह मधुर-मिलन की रात आई, स्तब्ध रात्रि ने चारों दिशाएँ ढक लीं, दीपक बुझ गए, द्वार बन्द हो गए, श्रावण के मेघ चारों ओर घिर गए।

उस मौन अन्धकार में केवल मेरे वक्ष पर पड़ी मेरी मणिमाला ही बार-बार दीपक समान चमक उठती है। उसे कहाँ छिपाऊँ, किस प्रकार दूर करूँ, इस निर्लज्ज आभूषण का क्या उपाय करूँ ?

हम तो इस गुप्त प्रेम-कथा को अपने तक ही रखते हैं, लेकिन वासन्ती मलय हमारी ही बात सबको सुनाती है,

कोयल हमारे ही राग को गाती है, वन-वन अकेली बहती नदी भी कलकल स्वर में हमारी ही गुप्त कहानी सब पर प्रकट कर रही है।

और तो और, अपनी वीणा की तारों में हम जिस कथा का गोपन करना चाहते हैं, झंकार के छल से वही कथा प्रकट होती जा रही है।

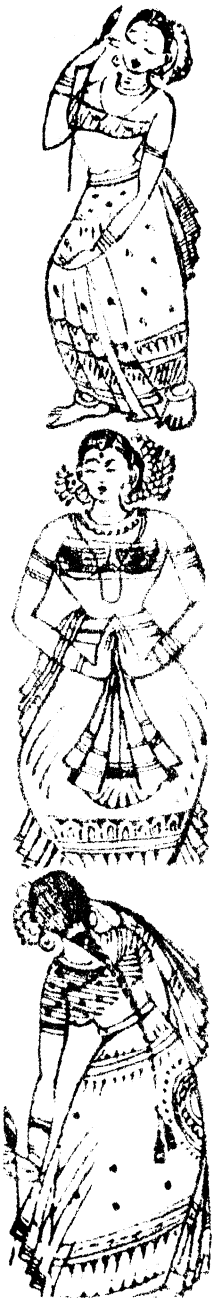

अतिथि

अपने सब काज समेट ले बहू, अतिथि आया है।

सुन रही हो न ! वह तेरे द्वार पर बँधी सांकल को धीमे-धीमे खटखटा रहा है।

देख, कहीं तेरे पैरों के झाँझर ऊँचे स्वर से न बज उठें, और उससे भेंट के लिए जाते हुए तेरे चरण हठात् चंचल न हो जायँ।

सब काज समेट ले बहू, तेरे गृहद्वार पर अतिथि आया है।

नहीं बहू, यह हवा का झोंका नहीं है; तेरा भय मिथ्या है। आज फागुन की पूर्णिमा के चाँद से आकाश में आलोक भर गया है। शंका हो तो माथे पर घूँघट डाल, हाथ में दीपक लेकर द्वार पर जा। यह वही है बहू, उसी की आहट है, आँधी के झोंकों की नहीं।

शंका हो तो बहू, उससे एक भी शब्द न बोलना, उससे भेंट होने पर द्वार के एक कोने पर नीरव खड़े रहना।

यदि वह प्रश्न पूछे तो धीमे से पलकों को झुका लेना और मौन रहना और देख, जब तू उसे दीपक लेकर रास्ता दिखलाएगी तो ध्यान रखना कहीं तेरे हाथ के कंगन ऊँचे स्वर से न बज उठें।

बहू, तेरा गृहकाज पूरा नहीं हुआ क्या ?

सुनो, अतिथि आ गया है। अभी तक तूने आरती का

थाल नहीं सजाया ? गोष्ठगृह के प्रदीप की ज्वाला नहीं जलाई ? सीमन्त पर यत्न से सिन्दूर-बिन्दू नहीं लगाया ? सन्ध्या का साज अभी तक पूरा नहीं किया तूने ?

सुन रही हो न, तेरे गृहद्वार पर अतिथि आया है। तेरा सब गृहकाज पूर्ण हो गया क्या ?

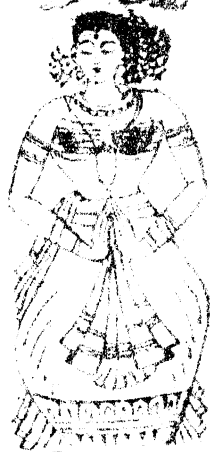

हृदय यमुना

यदि तुझे कलश भरना है तो आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यहाँ का अतल गम्भीर जल तेरे दोनों चरण धो देगा।

आज गहन मेघराशि निविड़ कुन्तलों सदृश मेरे दोनों तटों पर छा गई है।

तेरे पैरों की आहट और नूपुरों की झनझन को मैं खूब पहचानता हूँ। वह मेरे हृदय पर अंकित है। तू एकाकी क्यों बैठी है? यदि तुझे गागर भरनी है तो आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यदि तुझे अलस विश्राम करना है, सब कुछ भूलकर पानी की लहरों पर कलश तैराना है तो भी आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यहाँ सुन्दर श्याम दूर्वादल है, नवनील नभस्थल है और अगणित फूलों से भरा किनारा है।

यहाँ, जैसे पक्षी अपने घोंसले से उड़कर आकाश में स्वच्छन्द विचरते हैं, तेरे स्वप्न भी तेरी दो काली आँखों से बाहर निकलकर स्वतन्त्र विहार कर सकेंगे। तेरा आँचल कन्धों से खिसककर नीचे ढुलक जायगा। यदि तुझे सब भूलकर अपना कलश पानी में छोड़ अलसाई घड़ियाँ बिताना है तो भी आ, मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

यदि तुझे तट का खेल-खिलवाड़ छोड़कर अवगाहन

करना है तो भी आ, मेरे सरोवर पर आ। यहाँ गहन तल है।

नीले रंग की ओढ़नी तट पर रख दे, सुनील जल ही तेरी लाज ढक लेगा। स्नेहार्त तरंगें तेरे कंठ को चूमने और तेरे कानों में भेद-भरी बातें बताने के लिए उछल-उछलकर चारों पार्श्वों से ऊपर उठने लगेंगी; कभी हँसेंगी, कभी रोयेंगी। यदि तुझे अवगाहन करना है तो भी आ, मेरे सरोवर के गहन तल में आ।

यदि तुझे उन्मत्त होकर मौत की घाटी में कूदना है तो भी आ, मेरा सरोवर-सलिल बड़ा गहरा है।

यह समुद्र-सा स्निग्ध, शान्त और अगाध है। न इसका तल है न तीर। यह मृत्यु-सा स्थिर और नीरव है। न यहाँ दिन और रात की सीमा है और न आदि अन्त का परिणाम है। आ, यदि तुझे मौत की घाटी उतरना है तो भी मेरे हृदय-सरोवर पर आ।

प्यासी

मुझे कुछ भी न चाहिए।

वृक्ष की ओट में मैं नतशिर चुपचाप खड़ा रहा।

वहाँ भोर की आँखों में अभी तक अलस अरुणाई भरी थी और पवन के पंख अभी तक ओस से भारी थे।

नूतन तृणों में उठती भीनी-भीनी सुवास अभी तक मन्द प्रभाती पवन में भरी हुई थी।

तू अकेली, कुटिया के बाहर छाया में बैठी अपने नवनीत कोमल हाथों से दूध दोह रही थी। मैं वहाँ केवल विस्मय-विमुग्ध-सा चुपचाप खड़ा रहा।

मैंने कुछ भी नहीं कहा। वकुल शाखा पर बैठा पक्षी जाने कैसे मेरी व्याकुलता जान गया। आम्र-वृक्ष स्वयं ही गाँव के रास्ते पर अपनी खीलें बिखेरने लगे और गुंजन-स्वर करती मधुमक्खियाँ एक के बाद एक आकर गुनगुनाने लगीं। सरोवर के पास वाले शिव-मन्दिर का द्वार खुला, संन्यासी शान्त गम्भीर स्वर में प्रभाती गीत गाने लगा। तू अपने घुटनों पर दूध का घट थाम वृक्ष-तले बैठ दूध दोहने लगी। मैं अपना रिक्त पात्र लेकर चुपचाप लुब्ध-सा खड़ा रहा।

मैं तेरे पास नहीं आया। उन्मत्त हवा ने तेरे अलकों को न जाने कैसा कर दिया! देवालय का घण्टा बज उठा, आकाश जाग गया, पृथ्वी देवता से आशीष माँगने ऊर्ध्व गगन में उड़ चली, कटि पर गागर थामे ग्राम-वधुएँ लौट पड़ीं। तेरी कलई के कंगन झनझनाने लगे और दूध का पात्र फेन से ऊपर तक भर गया।

मानो सम्पूर्ण विश्व के प्राण क्षुब्ध हो गए थे।

कवि का वय

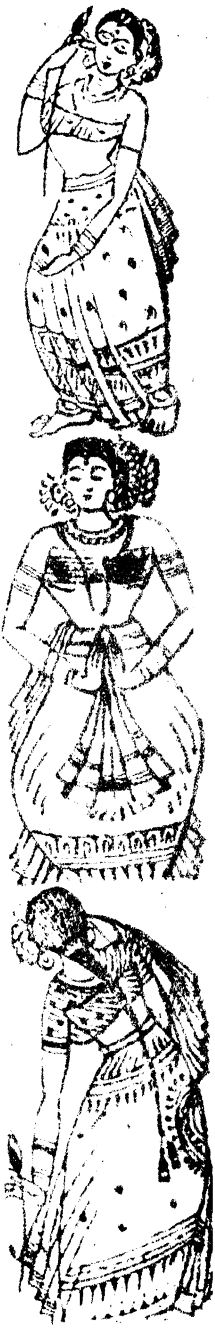

महाकवि, साँझ की वेला आ गई, केश पककर धवल होने लगे तुम्हारे।

अपने गीतों में क्या उस पार की पुकार नहीं सुना करते तुम ?

कवि ने कहा : सन्ध्या-समय सत्य ही आ गया, तथापि अभी मैं उस पार की पुकार नहीं सुन रहा। किसलिए ? इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कोई पास की वकुल वन छाया से मुझे पुकार उठे; अथवा कोई विरह-विकल प्रेमी मिलन को अधीर हो उठें और मेरे गीतों की गूँज न सुन पायें; अथवा दो प्यासे नेत्र मिलन से पूर्व मेरे गीतों से पुलक प्रेरणा पाने की प्रतीक्षा ही करते रह जायँ।

कदाचित् मैं भी लोकधारा से विलग हो लोकान्तर के स्वर-संचय में व्यस्त हो जाऊँ तब प्रेम-पुलकित वीणा के इस लोक के स्वर-कंपन को गीतों में कौन पिरोएगा ?

एक दिन···

जब सन्ध्या-तारक उदय होकर अस्त हो गया हो;

नदी-तट पर श्मशान की जलती चिता के दहकते अंगारे बुझ गए हों;

शृगालदल ऊँचे स्वर से चीत्कार करने लगे हों; कृष्ण-पक्ष का चाँद पीला पड़ गया हो;

ऐसे समय यदि कोई सद्यःविरक्त पथिक आ जाय और सिर झुका सप्तर्षियों को देखने लगे और गहन अन्धकार का शब्दहीन गीत सुनने को तन्मय हो जाय और मैं

-MANISHI DEY-

भी अपना द्वार बन्द कर, संसारी शृङ्खलाओं से मुक्त होने के स्वप्नों में डूब जाऊँ, तब उस विरक्त पार्थव को जीवन के रहस्य-गीत कौन सुनाएगा ?

मेरे केशों में धवलिमा झलकने लगी है, किन्तु मैं आज भी वैसा ही तरुण हूँ जैसा कभी था और अब भी उतना ही वृद्ध हूँ जितना इस गाँव का छोटे-से-छोटा बालक है।

कुछ लोगों के अधरों पर सदा मधुमय निर्मल हास्य खेलता है और कुछ की भृकुटियाँ अल्पवय में ही छल-कपट की तिरछी रेखाओं से कुटिल हो जाती हैं।

कुछ के आँसू आँखों में छलक-छलक आते हैं और कुछ के आँसू मन-ही-मन सूख जाते हैं।

कुछ प्रमादी घर के कोने में ही बैठे-बैठे थक जाते हैं और कुछ पुरुषार्थी अपना कार्य-रथ जगत् के ओर-छोर में अन्तिम श्वासों तक दौड़ाते रहकर भी नहीं थकते।

कुछ अपने एकाकी निरापद् क्षेत्र में भी अपने योग्य स्थान नहीं बना पाते और कुछ हैं जो लक्षकोटि जनारण्य में भी अपना यशस्वी मार्ग बना लेते हैं।

मुझे संसार के कोटि-कोटि जनों में रहकर गीत गाने हैं। उस पार के गीत गाने का समय ही नहीं है मेरे पास।

पथ

एक दिन···

ग्राम-पथ पर मैं अकारण ही चला जा रहा था; वेणु-वन में वायु प्रचण्ड वेग से चल रही थी।

परछाइयाँ वेग से भागते हुए प्रकाश के पैरों पर लिपटने के लिए हाथ पसार रही थीं; कोयल अपने समरस संगीत से ऊब चुकी थी; मैं मार्ग पर एकाकी अकारण ही चला जा रहा था।

जलाशय के पास की कुटीर पर वृक्ष की शाखाएँ झुकी हुई थीं। कुटीर के अन्दर कोई अपने नित्य के काम-काज में लगी थी; उसकी चूड़ियों का संगीत कुटीर के कोने से उठ रहा था।

मैं उस कुटीर के सामने जाते-जाते अकारण ही रुक गया।

वह पेचदार सँकरी पगडण्डी सरसों के कई खेतों और बागों के बीच से होकर गुजरती थी। वह मार्ग कितने ही गाँवों के मन्दिरों, गाँवों के चरागाहों और ग्राम्य-नदी के कितने ही घाटों को छूता जाता था।

मैं उस कुटीर के सामने जाते-जाते अकारण ही रुक गया।

इससे पहले एक दिवस मुझे याद आता है—आम्र-गन्ध से भारी फागुन मास का उदास पवन बह रहा था; वसन्त की मरमर ध्वनि में अलस मद भरा था; घाट की छलछलाती लहरें उचक-उचककर कलश को थपथपा रही थीं। वे सब बातें अकारण ही याद आ गईं।

पथ की परछाइयाँ दीर्घ होती जा रही हैं; थके पशु अपने घरों की ओर लौट रहे हैं; चरागाहों की निर्जनता घनी हो गई है; गाँव के लोग नदी-किनारे नौका की प्रतीक्षा में बैठे हैं।

मैं भी धीमे-धीमे अकारण ही पीछे लौट रहा हूँ।

सरल प्रेम

हृदय के निकट हृदय आया, नयनों से नयन मिले, दो प्राणियों के प्रणय की यही छोटी सी कहानी है।

चैत्र मास की शुक्ला सन्ध्या है; हवा में कस्तूरी की मादक सुवास भरी है; मेरी वंशी भूमि पर गिरी पड़ी है और तेरे पास पुष्पहार पड़ा है। हमारे-तुम्हारे प्रणय का यही रूप है और यही एकान्त का परिचय है।

वसन्ती रंग में रँगी तेरी ओढ़नी मेरी आँखों में मद ढाल रही है। तेरे हाथों से गुँथा जूही का हार मेरे वक्ष पर पड़ा है।

यह भी एक विचित्र खेल है! इसमें एक ही आदान है, एक ही प्रदान; एक ही प्रकाश है एक ही गोपन; एक ही मुस्कान है और एक ही लाज। दो जनों का यही परिचय है। तुम्हारे-हमारे प्रणय की यही छोटी सी कहानी है।

मधुमास के मिलन में कोई ऐसा गोपनीय रहस्य नहीं, असीम की कोई ऐसी अबोध कथा नहीं, जो मन में समाती न हो। इसमें सौन्दर्य की छाया नहीं और अन्धकार की गहराई में उतरकर कुछ टटोलने की कामना भी नहीं। मधुमास का यह मोदमय मिलन ही हमारा परिचय है।

हम शब्दों की परिधि से दूर किसी अनन्त मौन को घाटी में जाने का विचार नहीं करते; हम किसी लोकातीत वस्तु को पाने की आशा से महाशून्य में अपनी कल्पना के पंख नहीं फैलाते। जो हम देते हैं और पाते हैं वही हमारे लिए बहुत है।

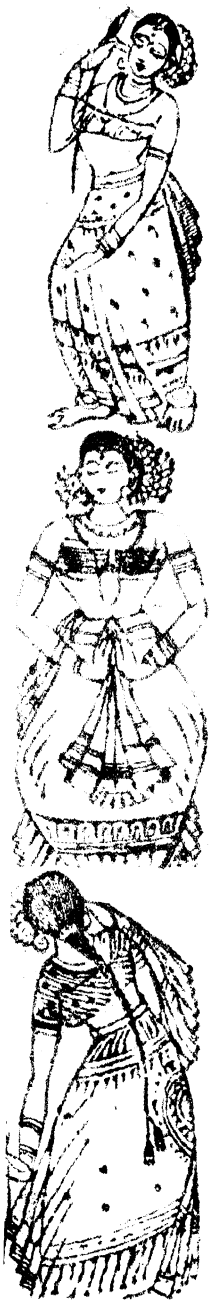

हम आनन्द की द्राक्षाकलियों का दलन कर कष्टों का आसव नहीं बनाते। मधुमास के मोदमय मिलन का यही हमारा परिचय है।

एक गाँव

हम दोनों का एक ही गाँव था, यही हमारा एकमात्र सुख था।

गाँव के एक वृक्ष पर बैठा एक पीताश्म पक्षी मधुर गीत गाता है और मेरे हृदय में आनन्द-विह्वल नृत्य भर देता है।

उसके पालतू भेड़ों का युगल हमारे बाजरे के खेत वाले वृक्ष की छाया में चरने को आता है; मैं उसे गोद में उठा लेता हूँ।

हमारे गाँव का नाम खंजना है और हमारे गाँव की नदी को सब अंजना नाम से पुकारते हैं। मेरा रंजना नाम गाँव के सब लोग जानते हैं।

हम दोनों के बीच केवल एक खेत की दूरी है। जो मधुमक्खियाँ हमारे कुंज में अपना छत्ता बनाती हैं वे मधु-रस का संचय करने उसके वनपुष्पों पर मँडराती हैं। उसके घाट पर बहाये हुए फूल हमारे घाट को छूकर बहते हैं।

हमारे इसी गाँव का नाम खंजना है और हमारे गाँव की नदी को सब अंजना नाम से पुकारते हैं। मेरा नाम गाँव के सब लोग जानते हैं और वह नाम रंजना है।

उसके घर की ओर मुड़नेवाली गली, वसन्त में आम्र-मंजरियों की सुवास से महक उठती है।

जब उसके सरसों के खेत पक जाते हैं तो हमारे खेत भी पीले रंग की चुनरी ओढ़ लेते हैं। उसकी कुटिया पर मुस्काने वाले तारे हमारी ओर भी हास्यमय दृष्टि से आँख झपकते हैं।

उसका जलाशय भरने को जब श्रावण धारा झरती है,
तो हमारे वन में कदम्ब के फूल फूट उठते हैं।

हमारे गाँव का नाम खंजना है और गाँव की नदी का नाम अंजना है। मेरा नाम रंजना है, जो गाँव-भर को मालूम है।

एक दृष्टि

कक्ष में कलस लिये वह कुटिया से छूते पथ पर चली जा रही थी।

अकस्मात् घूमकर उसने, जाने क्यों, घूँघट के भीतर से देखा।

उस दृष्टिपात ने पवन के उस प्रवाह की तरह मेरे रोम-रोम को चंचल कर दिया जो जलाशय के प्रशान्त जल को तरंगित कर देता है। क्षण-भर दूर से परस्पर का यह दृष्टि-पात ही मेरा-उसका परिचय था।

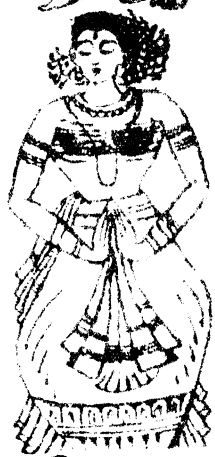

यह निमेष-भर की दृष्टि सन्ध्या-काल के उस पक्षी की तरह थी जो दीपहीन कमरे के वातायन से आकर उड़ता हुआ बाहर निकलकर रात्रि के अन्धकार में लुप्त हो जाता है।

तूने एकमात्र कौतूहलवश इस पथ के एकमात्र पथिक पर दृष्टिपात किया।

जिस तरह आंचल में ढकी हो वैसी ही ढको रहो। पथ पर जाते-जाते तूने जरा थमकर दृष्टिपात क्यों किया? यह लीला क्यों की? कक्ष में कलस लिये तू जा रही थी, अचा-नक ही घूमकर घूँघट हटाकर निमिष-मात्र क्यों देखा?

सकरुण

सखि, क्या प्रतिदिन इसी प्रकार आकर चला जायगा वह ?

तू जा और मेरी वेणी का एक फूल उसे दे दे।

यदि वह पूछे किसने दिया, किस बाग का है, तब मेरी शपथ, मेरा नाम न लेना।

सखि, वह वृक्ष के नीचे धूल में बैठ जाता है। जा, वहाँ वकुल पुष्पों का आसन बिछा दे।

अपनी सकरुण आँखों से वह मेरे मन में करुणा जगा देता है; किससे क्या कहना चाहता है, कुछ भी नहीं बोलता।

सखि, क्या प्रतिदिन इसी प्रकार आकर चला जायगा वह ?

द्वार पर

प्रभात के समय ही उस यात्री युवक ने मेरे द्वार पर आने का क्यों विचार किया ?

आते-जाते हर बार मैं उसके सामने से गुज़रती हूँ। मेरी आँखें उसके मुख पर अनायास रुक जाती हैं। बोलूँ या न बोलूँ, कुछ सूझता नहीं। सोचती हूँ, वह मेरे द्वार पर क्यों आया ?

आषाढ़ की मेघावृत रातें बहुत काली हो जाती हैं। शरद् का आकाश हल्के नीले रंग में रँग जाता है। बसन्त की सन्ध्या दक्षिण के पवन से चंचल हो उठती है। वह युवक हर ऋतु में अपने गीतों को नये स्वरों से गूँथ लेता है।

मैं जब अपना काम समाप्त कर लेती हूँ तो आँखों में एक स्वप्निल कुहरा भर जाता है।

आह, वह मेरे द्वार पर क्यों आया ?

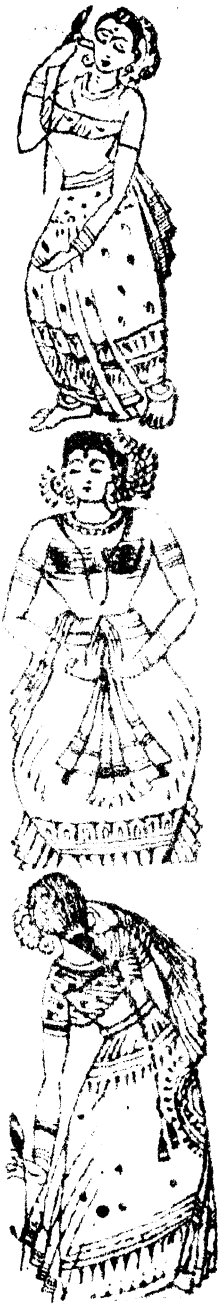

आंचल का स्पर्श

सहसा मेरे आंचल प्रान्त से छूती हुई वह मेरे निकट से चली गई।

मैंने उसे पार्श्व से देखा, सिहरन-भरा वह स्पर्श आंचल की वायु के साथ आकर चला गया।

हृदय-वन में एक अनजाना-सा उच्छ्वास उठा; टूटे हुए पुष्प की पंखुड़ी जैसे हवा में उड़कर लुप्त हो जाती है वैसे ही वह उड़ता हुआ स्पर्श मुझे छूकर क्षण-भर में अदृश्य हो गया।

जैसे वंशी का स्वर गूँजता रहता है, और फूलों का सुवास हवा में भर जाता है, वैसे ही अब भी मेरा हृदय उस स्पर्श का अनुभव कर रहा है। कौन जाने वह उसके सम्पूर्ण देह का कौनसा आकुल निःश्वास था या उसके हृदय की कौन मर्म-वार्ता थी, जो सर्वांग से मुझे जाने कौनसी भेद-भरी कथा कह गई !

लीला

अरी, क्यों अकेली बैठी-बैठी तू अपने कंगन झनझना रही है ? इसमें कितना छल भरा है !

कनक-कलश में जल भर ले और वापिस घर लौट चल।

अरी, अपने हाथों से पानी छलका-छलकाकर कौन-सा खेल खेल रही है तू, और किसलिए क्षण-क्षण चकित नयनों से देखती है ?

यमुना की लहरें अलसायी-सी खेल रही हैं और हास्य-भरे कल-स्वर में एक-दूसरे से कानाफूसी कर रही हैं। इस खेल में कितना छल भरा है !

नदी के उस पार क्षितिज पर मेघों का मेला जुड़ा है; उसकी सस्मित रक्ताभ छाया तेरे मुख पर पड़ रही है।

इसमें कितना छल भरा है !

एकान्त

मित्र, अपने मन का भेद अपने हृदय में ही छिपाकर मत रख।

मुझसे कह—एकान्त में, केवल मुझसे कह !

तेरी मृदु हास्य और मन्द स्वर में कही बात को मेरे कान नहीं सुनेंगे, केवल मेरा हृदय सुनेगा।

रात्रि गहन है; घर में निबिड़ नीरवता है; पक्षियों के घोंसलों में निद्रा का राज्य है।

तू अपने मन का भेद सहमे आँसुओं, सशंक मुस्कान और मधुर लज्जा में मुझसे कह—एकान्त में, केवल मुझसे कह !

दो पक्षी

पिंजरे का पक्षी सोने की शलाखों में बन्द था; वन्य पक्षी वन में।

एक समय भाग्यवश दोनों का मिलन हुआ।

वन्य पक्षी बोला : पिंजरे के बन्दी बन्धु, चलो वन में दोनों एक साथ रहेंगे।

पिंजरे के पक्षी ने कहा : वन्य पक्षी, यहाँ आओ, दोनों इस पिंजरे में साथ रहें।

वन्य पक्षी : न, मैं सीखचों में बन्द नहीं रह सकता।

पिंजरे का पक्षी बोला : हाय, मैं डरावने वन में कैसे रहूँगा ?

वन्य पक्षी बाहर बैठा-बैठा गीत गाता रहा। पिंजरे के पक्षी को उन गीतों का अर्थ समझ न आया; दोनों की भाषा अलग-अलग थी।

वन का पक्षी बोला : पिंजरे के बन्द भाई, चलो वन के गीत गायें।

पिंजरे का पक्षी : पिंजरे के गीत सीख लो बन्धु !

वन का पक्षी : न, मुझे सीखे हुए गीत नहीं गाने।

पिंजरे का पक्षी : हाय, मैं वन के गीत कैसे गाऊँ ?

वन का पक्षी : आह, मैं क्या सिखाऊँ तुम्हें ? संगीत अभ्यास से नहीं आता।

पिंजरबद्ध पक्षी : मेरा दुर्भाग्य, मुझे वन के गीत नहीं आते।

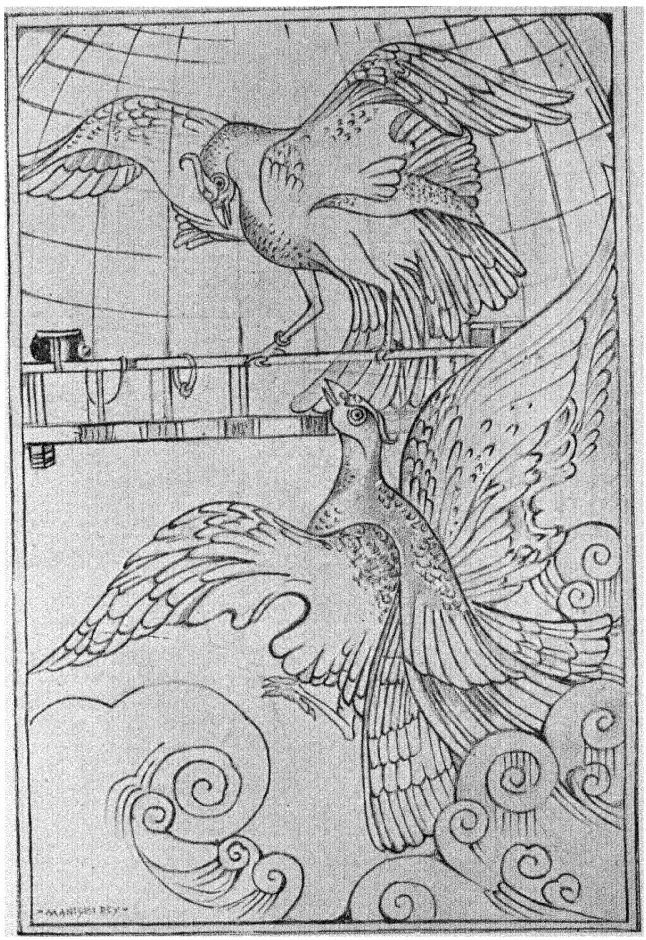

उनमें अगाध प्रेम था, तब भी दोनों पास न आ सके।

पिंजरे के सीखचों में से दोनों एक-दूसरे को नीरव स्नेह-भरी दृष्टि से देखते थे और एक-दूसरे का स्पर्श-सुख लेते थे। किन्तु दोनों एक-दूसरे को पूरी तरह पहचान न सके।

दोनों पंख फड़फड़ाकर परस्पर मिलन की आतुरता प्रकट करते और गाते : प्रिय, आओ, मेरे पास आओ !

वन्य पक्षी ने कहा : न भाई, कहीं पिंजरे के दरवाजे में बन्द हो गए तो ?

पिंजरे के पक्षी ने कहा : हाय, मेरे पंखों में उड़ने की शक्ति नहीं।

वन के पक्षी ने कहा : चलो, वन में उड़ोगे तो इस घने नीले आकाश में तुम्हें कहीं बाधा न होगी।

पिंजरे के पक्षी ने उत्तर दिया : वहाँ मुझे पिंजरे के सीखचों की तरह चारों ओर से कौन ढकेगा ?

वन का पक्षी बोला : अपने को एक बार उड़ते मेघों में छोड़ दो और देखो कितना आनन्द आता है !

पिंजरे के पक्षी ने कहा : अपने को एक छोटे से पिंजरे में बाँध रखो और देखो कितना सुख मिलता है !

वन का पक्षी बोला : न भाई, इतने छोटे में तो मैं उड़ भी न पाऊँगा।

पिंजरे के पक्षी ने कहा : हाय, मेघों में बैठने की जगह कहाँ पाऊँगा मैं ?

हृदय-भार

"युवक, आओ, सच सच कहो, तुम्हारी आँखों में यह मद क्यों भरा है ?"

"मैं नहीं जानता मैंने किन वन-पुष्पों का आसव पिया है जिससे मेरी आँखें मद-भरी हो गई हैं।"

"आह, कितनी लज्जा की बात है !"

"ठीक है, कुछ लोग मूर्ख हैं कुछ पंडित, कुछ सावधान हैं कुछ असावधान, कई आँखें हँसती रहती हैं और कई आँखों से आँसू झरते रहते हैं। मेरी आँखों में मद भरा है।"

"युवक, तुम वृक्ष की छाया में ऐसे चुपचाप क्यों खड़े हो ?"

"मेरे पैर मेरे हृदय के भार से थक गए हैं, इसलिए मैं यहाँ वृक्ष की छाया में चुपचाप खड़ा हूँ।"

"आह, कितनी लज्जा की बात है !"

"ठीक है, कुछ हैं जो अपनी राह पर सीधे चलते जाते हैं, कुछ ठहरकर विश्राम लेते हैं; कुछ स्वतन्त्र हैं और कुछ को दूसरों के इशारों पर चलना पड़ता है। मेरे पैर मेरे हृदय के भार से बोझिल हो गए हैं, इसलिए मैं यहाँ खड़ा हूँ।"

नम्र याचक

"तेरे दानोत्सुक हाथों से जो कुछ मिलता है, मैं ले लेता हूँ। उससे अधिक की मैंने कभी अभ्यर्थना नहीं की।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मैं जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सब कुछ माँग लेता है।"

"उसके पास अगर कोई डाल से टूटा हुआ फूल होगा तो मैं उसे हृदय में सजा लूँगा।"

"और जो काँटा हो ?"

"तो हँसकर उसे सहन करूँगा।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मैं जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सर्वस्व माँग लेता है।"

"किन्तु, यदि तू एक बार भी अपनी प्रेमार्त आँखें उठाकर मेरी ओर दृष्टिपात करे तो मेरा इहलोक-परलोक अलौकिक माधुर्य से भर जाय।"

"और यदि उस दृष्टि में क्रूर उपेक्ष-विष भरा हो ?

"तब भी मैं उस विष से दग्ध अपने हृदय को अनन्त काल तक तड़पने दूँगा।"

"हाँ, हाँ, नम्र याचक, मैं जानता हूँ, तू देने वाले से उसका सब-कुछ माँग लेता है।"

गहन वचन

"प्रेम यदि कष्ट भी दे तो अपने हृदय का द्वार बन्द मत कर।"

"नहीं मित्र, तेरे वचन बड़े गहन हैं, मेरी बुद्धि में नहीं समाते।"

"प्रिय, हमारा हृदय आँसुओं और गीतों के साथ अर्पित होने के लिए ही बना है।"

"नहीं मित्र, तेरे वचन बड़े गहन हैं, मेरी बुद्धि में नहीं समाते।"

"आनन्द ओसकण की तरह नश्वर है—उनकी तरह जो हँसते ही मर जाते हैं, किन्तु विषाद स्थायी और सबल होता है। अपनी आँखों में विषाद-भरा प्रेम जागृत कर।"

"नहीं मित्र, तेरे वचन बड़े गहन हैं, मेरी बुद्धि में नहीं समाते।"

"कमल सूर्य की आभा में खिलता है और अपना सब-कुछ खो देता है। अनन्त काल तक वह कालिमा के रहस्य-भरे आवरण में छिपा नहीं रह सकता।"

"नहीं मित्र, तेरे वचन बड़े गहन हैं, मेरी बुद्धि में नहीं समाते।"

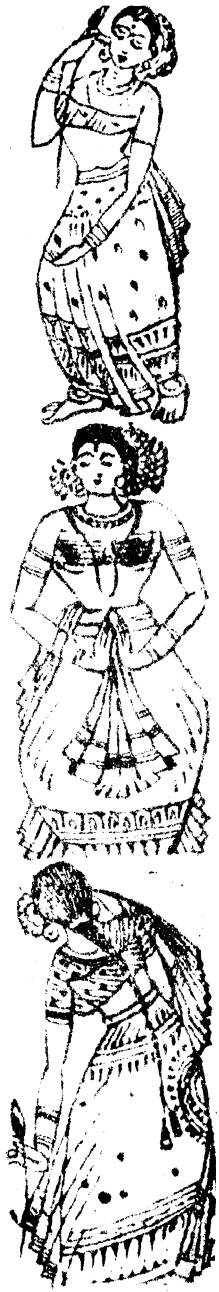

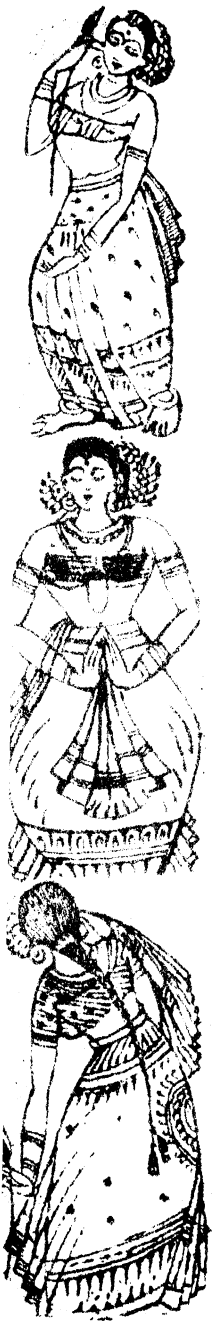

दुर्बोध

तुम मेरी थाह नहीं पाती सखि !

तुम्हारी प्रशान्त, विषाद-भरी आँखें प्रश्न कर रही हैं; मेरे रहस्य को पाने का यत्न कर रही हैं, जैसे नभ में स्थिर नतमुख चन्द्र समुद्र के हृदय की थाह पाने का यत्न करता है।

मैंने अपना कुछ भी नहीं छिपाया। जो कुछ है सब तेरी आँखों के सामने अनावृत रख दिया; सब कुछ तुझे दे दिया, तो भी तुम मेरी थाह नहीं पाती क्या ?

यदि यह एक रत्न होता तो मैं इसे शत-शत खण्डों में तोड़कर, एक सूत्र में पिरोकर, तेरे कण्ठ में पहना देता।

यदि यह एक सुन्दर छोटा-सा फूल होता तो मैं उषा-काल में बिखरी पंखड़ियों और बसन्त में झूलती डालियों से चुनकर तेरी शस्य-श्यामल वेणी में गूँथ देता।

किन्तु सखि, यह तो हृदय है, न इसका ओर-छोर है, न इसकी कोई दिशा है, न अन्त !

इसका कोई आदि-अन्त नहीं जान सकोगी रानी ! यह तो केवल तुम्हारी राजधानी है !

यदि यह केवल आनन्द या एक मुक्त हास्य होता जो आनन्द के लिए खिलता है तो तू एक पल में हृदय-वार्ता जान लेती और यह न कहती कि इसका रहस्य क्या है।

यदि यह केवल एक विषाद होता, दो आँखों में छल-

छल करते दो बिन्दु होते तो विपन्न म्लान मुख पर प्रत्यक्ष ही अन्तर की व्यथा चित्रित हो जाती।

सखि, यह तो हृदय का प्रेम है !

इसके सुख-दुःख का, वेदना का, न आदि है न अन्त; इसके वैभव और अभावों की भी कोई सीमा नहीं। दिन-रात नई-नई व्याकुलता जन्म लेती है इसमें; तभी हमें इसकी थाह नहीं मिलती।

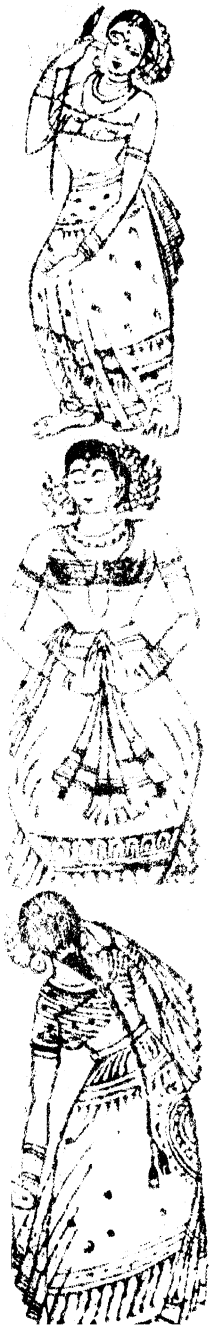

गीतों का अर्थ

बोलो प्रेमी, बोलो, जो गीत तुम गा रहे थे उसका अर्थ मुझे समझा दो।

रात अँधेरी है, तारे बादलों में छिप गए हैं, पवन पत्तों में से उच्छ्वास ले रहा है।

मैं अपनी वेणी का बन्धन खोल दूँगी। मेरा नीला आंचल ही मुझे रात की काली चादर की तरह लिपटाए रखेगा। तुम्हारे सिर को मैं अपने वक्ष से लगा लूँगी, और इस मधुर एकान्त में तुम्हारे हृदय से बातें करूँगी। मैं अपनी आँखें बन्द कर लूँगी और केवल सुनूँगी, तुम्हारी ओर देखने को भी मैं आँखें नहीं खोलूँगी।

जब तुम सब कह चुकोगे, हम चुपचाप बैठे रहेंगे। केवल वृक्षों की डालियाँ ही आपस में बातें करेंगी।

जब रात का अँधेरा पीला पड़ जायगा, दिन का धुँधला प्रकाश छा जायगा। हम मुख उठाकर एक-दूसरे की आँखों में देखेंगे और अलग-अलग रास्तों पर चल पड़ेंगे।

बोलो प्रेमी, बोलो, अपने गीतों का अर्थ मुझे समझा दो।

मानस-प्रतिमा

तू मेरा शान्त, सुदूर, शून्य गगनविहारी, सान्ध्यकालीन मेघ है।

मैं मन के अमित माधुर्य का संचय कर अपनी स्वप्न-तूलिका से तुझे चित्रित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे असीम गगनविहारी, तू मेरा है !

मैं अपने हृदय-रक्त से तेरे चरण रंजित करता हूँ। हे मेरे सन्ध्या-स्वप्नविहारी, तू मेरा है !

अपने खंडित सुख-दुःख के विष-अमृत मिले रंगों से मैं तेरे अधर अंकित करता हूँ।

तू मेरा है, ओ मेरे विजन जीवनविहारी, तू मेरा है !

मैंने अपने मोह के स्वप्नों से निर्मित अंजन तेरे नेत्रों में भर दिया है, ओ मेरे मूक नयनविहारी !

मेरा संगीत तेरे अंग-अंग में समा गया है। तू मेरा है, तू मेरा है, हे मेरे जीवन-मरणविहारी, तू मेरा है !

हृदय-आकाश

मेरे मन नील-गगनविहारी विहंगम ने तेरे नयन-सलिल में नया नीलाम्बर देख लिया है।

तेरे नैनों की कोर में न जाने कौनसा अलौकिक रहस्य निहित है ! तेरे हँसने पर जब नैन पलक खुलते हैं तो उनमें उषा का आलोक भर जाता है।

हृदय उस नवनीलाम्बर में एकाकी उड़ने को आतुर हो जाता है और उस नील नेत्रों के देश में जाकर वहीं रमण करने को अधीर हो उठता है। उस अतल गगन सामर की गहराई में डूबकर मेरे गीतों के उच्छ्वास लुप्त हो जाते हैं।

तेरा नीलाम्बर असीम है, विजन है, उसकी निर्मल नीलिमा के शून्य में मैं अपने कनकवर्ण पंखों से उड़ता ही जाऊँ, यही कामना है।

मेरा तृषित हृदय-चातक एक अश्रु-बिन्दु के लिए आतुर है और मेरा हृदय-चकोर चाँद की एक हास्य-किरण के लिए अधीर है।

कस्तूरी-मृग

अपनी ही गन्ध में पागल कस्तूरी-मृग-समान मैं भी पागल हुआ वन-वनान्तरों में भटक रहा हूँ।

फागुन की मध्य-रात्रि है, दक्षिण पवन बह रहा है, दिशा का ज्ञान भी नहीं रहा।

जो नहीं चाहिए वही मैं चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उससे विरत हो जाता हूँ।

अन्तःकरण से बाहर आकर मेरी ही वासनाएँ मृग-मरीचिका-सम झिलमिलाती हैं; और जब भुजाएँ फैला उन्हें वक्ष में समेटने का यत्न करता हूँ तो ओझल हो जाती हैं।

जो नहीं चाहिए वही मैं चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उससे विरत हो जाता हूँ।

अपने रागों को उन्मत्त पागल-सा मैं अपनी वंशी के स्वरों में बाँधने का यत्न कर रहा हूँ। किन्तु जो स्वरों में बँध गया है उसमें राग नहीं रहा; बहुत खोजने पर भी नहीं मिलता।

जो नहीं चाहिए वही मैं चाह रहा हूँ और जो पा लेता हूँ उसके प्रति मन में विरक्ति भर जाती है।

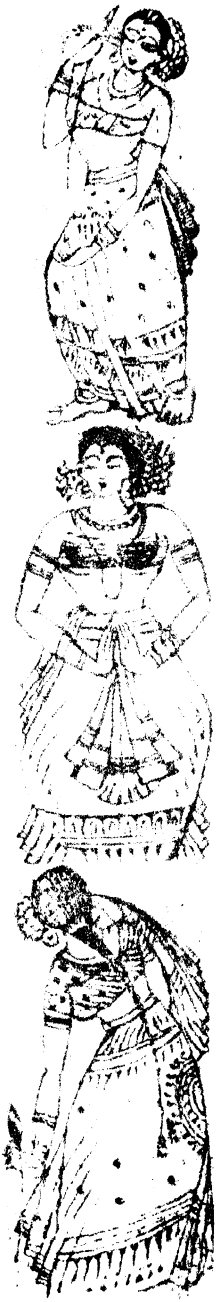

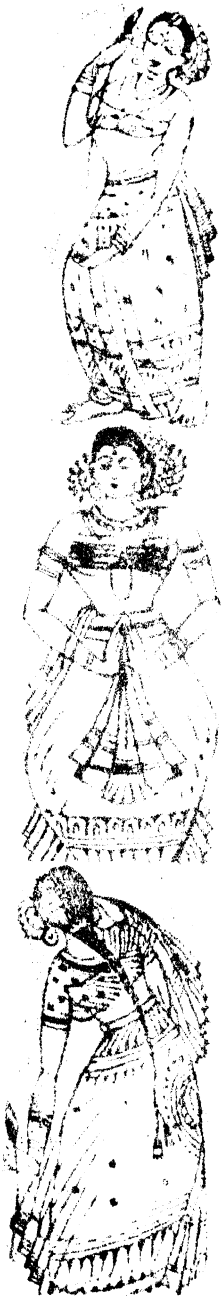

प्रणय-प्रश्न

क्या यह सब सत्य है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सब सत्य है ?

मेरी आँखों के उज्ज्वल आलोक के स्पर्श से तेरे हृदय-मेघ झनझना उठते हैं; क्या यह सत्य है ?

मेरे ओष्ठ नववधू की प्रथम लज्जा के समान आरक्त हैं, क्या यह सत्य है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सत्य है ?

मेरे अंग-अंग में चिर मन्दार फूट उठा है और मेरे पदचाप से विश्व-वीणा के स्वर झंकृत हो जाते हैं, क्या यह सत्य है ?

क्या यह भी सच है कि निशा-सुन्दरी के अश्रु मेरे हित ही झरते हैं और प्रभात का आलोक मेरे आलिंगन से ही पुलकित होता है ?

और, क्या यह भी सच है कि मेरे संतप्त कपोल का स्पर्श ही पवन को मदिरमत्त बना देता है ?

प्रकाश का देवता सूर्य मेरे कृष्ण केश-पाश में तिरोहित हो जाता है और मरण मुझे दोनों भुजाओं में बाँध लेता है; क्या यह भी सत्य है ?

मेरे आंचल में विश्व का विराट् जीवन सिमटकर समा गया है और निःस्वर विश्व मेरे ही कण्ठ में स्वर की चरम सीमा पा रहा है; क्या यह भी सत्य है ?

सम्पूर्ण त्रिभुवन की अर्पण-भावना का केन्द्र मैं ही हूँ, हे मेरे अनुरक्त, क्या यह सत्य है ?

मेरा प्रणय युग-युग से तुझे लोक-लोकान्तर का परिभ्रमण करा रहा है और अन्त में मेरी वाणी में, नयन में, अधरों और अलकों में आकर तुझे एक निमिष में जन्म-जन्मान्तर की विश्रान्ति मिल जाती है; यह भी सत्य है क्या ?

मेरे सुकुमार ललाट-पट पर असीम अनन्त का रहस्य लिखा हुआ है, हे मेरे चिर प्रेमी, क्या यह सत्य है ?

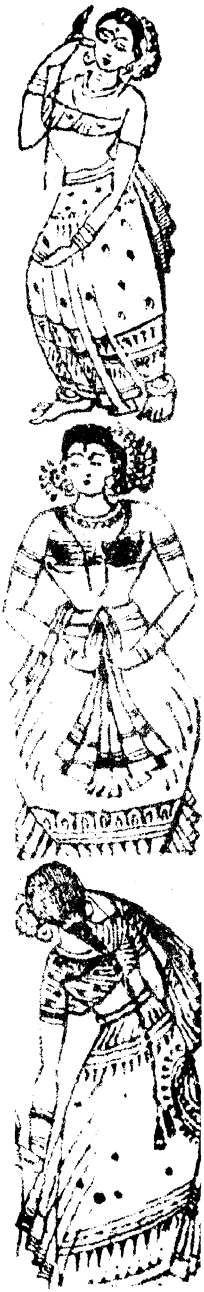

मार्जना

प्रियतम, मैं तुम्हारा प्रेम-भिखारी हूँ, मुझे क्षमा करो, मेरी विवशता का विस्मरण कर दो।

पथ-भूले भीरु पक्षी के समान मैं पिंजर-बद्ध हो गया हूँ। तथापि हे प्रियतम, द्वार बन्द न करो, न करो।

मेरा सब संचित धन निःशेष हो गया। अपना आवरण भी न सँभाल सका मेरा विक्षिप्त हृदय; तुम्हीं अब उसकी नग्नता को ढको। करुणा करो प्रिय, मैं अबला हूँ, मेरी लाज रखो प्रियतम !

यदि तुम मुझे प्रेम के योग्य नहीं समझते तो भी मुझे क्षमा करो।

व्यंग-भरी आँखों से देखते हुए मेरा उपहास न करो।

मैं चकित भयभीत-सा अपने एकाकी कक्ष में लौट जाऊँगा और भवन की अन्धकारपूर्ण भित्तियों में अपने को छिपा रखूँगा। अपने दोनों हाथों से मैं अपनी नग्न हृदय-वेदना को ढक लूँगा।

मेरी ओर से अपनी कटाक्ष-भरी दृष्टि हटा लो, प्रिय, मुझ दैवाहत को क्षमा करो।

प्रियतम ! यदि तुम मुझसे प्रेम करते हो तो मेरे उल्लास के लिए मुझे क्षमा कर दो।

जब मेरा हृदय सोहाग के स्रोत में निर्बाध बह निकले तो तुम दूर बैठकर मेरा उपहास न करना।

जब मैं अपने को रानी मान रत्नासन पर बैठूँ और

तुम्हें प्रगाढ़ प्रणय-सूत्र में बाँधना चाहूँ या प्रेम-प्रताड़िता रमणी की भाँति तुम्हारी तृषा शान्त करूँ, तब भी हे नाथ, मेरे गर्व की रक्षा करना और मेरे उत्सुकता-भरे पुलक प्रदर्शन के लिए मुझे क्षमा करना।

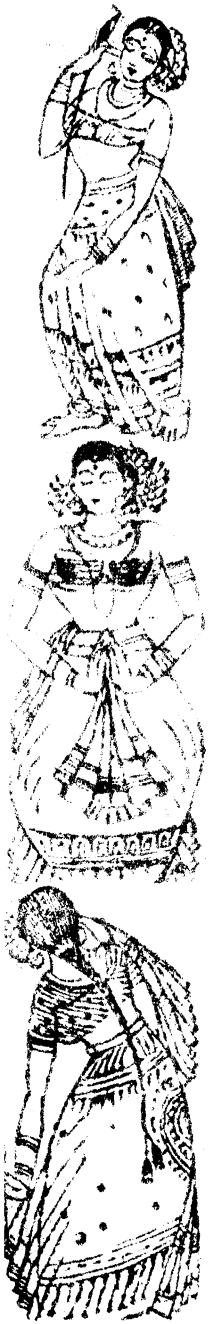

अनुरोध

प्रिये, कहीं मेरी अवहेलना कर अचानक मेरा परित्याग न कर जाना !

सारी रात मैं तुझे अपलक देखता रहा हूँ ; अब मेरी आँखें निद्रा-भार से बोझिल हो रही हैं।

मुझे भय है, जब मैं गहरी निद्रा में अपने को खो दूँगा तब तू भी मेरा कक्ष छोड़ दूर चली जायगी।

प्रिये, विनती करता हूँ, मुझसे पूछे बिना मत चले जाना।

मैं चौंककर उठ बैठता हूँ और तुझे स्पर्श करने को हाथ बढ़ाता हूँ। उस समय मन में कम्प उठता है, 'कहीं यह सब स्वप्न तो नहीं ?'

अपने हृदय-रज्जु से तेरे चरण बाँधकर वक्ष से लगा लूँ, तभी मुझे शान्ति मिलेगी।

प्रिये, मुझसे पूछे बिना मत चले जाना।

कौशल

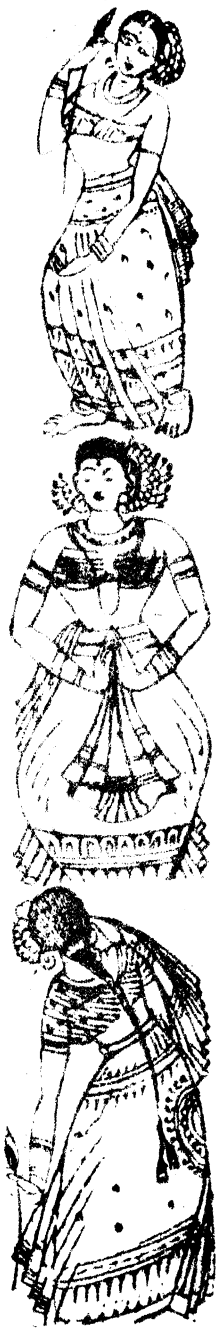

तुझे सहज में पहचान न लूँ, तभी तू यह छल-लीला कर रहा है प्रिय ! बाहर तेरी हास्य-छटा खिल रही है और भीतर चक्षुकोर में अश्रु भरे हैं।

जान गया मैं तेरा यह छल, जान गया !

जो बात तेरे मन में छिपी है, जो व्यक्त करना चाहता है, वही तेरे होठों पर नहीं आती।

कहीं मैं तुझे स्पर्श न कर लूँ, तुझे पा न लूँ, इसलिए भी तूने अपना ओर-छोर न रखा ; तू स्वयं रूप-स्पर्शातीत रहा।

सब पक्ष तुझे अपने निकट लाने की चेष्टा करते हैं ; इसीलिए तू सबसे विरक्त, विरूप और विमुख हो जाता है।

जानता हूँ, मैं तेरा यह छल खूब जानता हूँ !

जिस पथ पर तू चलना चाहता है उस पर तू नहीं चलता।

सभी तुझे अपना इष्ट मानते हैं ; तभी तू सबसे विमुख हो जाता है और खेल-खेल में प्रार्थी के भिक्षा-पात्र को दूर फेंक देता है।

जानता हूँ, तेरा यह छल खूब जानता हूँ !

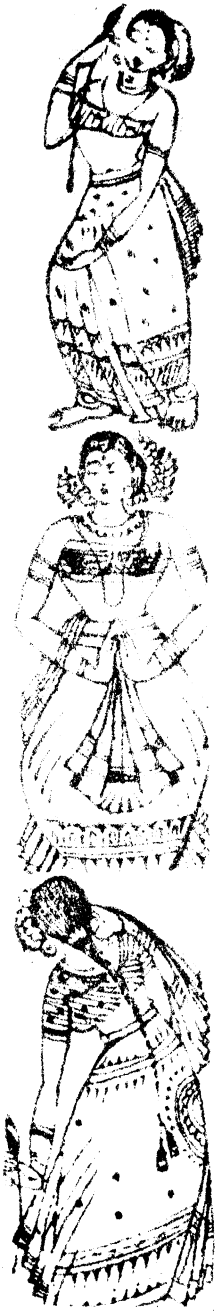

भर्त्सना

उसने धीमे से कहा : "प्रिये, मुखड़ा तो ऊपर उठाओ !"

रूठकर तूने जवाब दिया : "जाओ जी सखि ! जाओ, सताओ नहीं ।" तभी तो वह गया नहीं ।

सम्मुख खड़े होकर उसने कहा : "हटो ।" तब उसने दोनों हाथ बाँध लिये और खड़ा रहा ।

सखि ! ओ सखि ! तभी तो उसने तेरे हाथ नहीं छोड़े ।

अपने मुख को कानों के बहुत निकट लाकर मैंने उसकी ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखते हुए कहा : "छिः छिः, कितने निर्लज्ज हो !" सखि ! ओ सखि ! शपथ से कहता हूँ तभी तो उसने हाथ नहीं छोड़े, वह पास से नहीं हटा ।

तब उसके अधर और कपोल मुझे स्पर्श कर गए । काँपकर मैं कह उठा : "तुम-सा कोई नहीं देखा । तुम बहुत धृष्ट हो ।" सखि ! ओ सखि ! तभी तो उसने अपना मुख नहीं फिराया ।

उसने अपनी माला मुझे पहना दी । मैंने कहा : "माला का क्या प्रयोजन ?" सखि ! ओ सखि ! उसे न लज्जा आई, न वह डरा ही । उसके सब अनुनय-विनय झूठे थे ।

उसने गले से पुष्पहार लिया और चला गया । मैं उसे पाने को अवाक् खड़ा रहा । सखि ! ओ सखि ! मैं हृदय पर हाथ रखकर पूछता हूँ, क्या वह लौटकर न आएगा ?

उत्सृष्ट

तूने यह सुवासित पुष्पमाला व्यर्थ ही गूँथी और व्यर्थ ही मेरे कण्ठ में पहनाई।

हे निर्मल ! तेरी भावना का मैं आदर करता हूँ ; किन्तु, इतना जान लो कि यह माला मेरे अकेले के लिए नहीं बहुतों के लिए है। यह उनके लिए भी है जो अज्ञात प्रदेशों में रहते हैं, जिनके मुख घूँघट में छिपे रहते हैं, जिन्हें कोई पहचानता नहीं। एवं अतीतकाल के उन वीरों के लिए भी है जो अमर हो चुके हैं। उनका परिचय केवल कवि के गीतों में मिलता है।

हृदय के मूल्य में आज क्या कोई हृदय देगा ? वह समय बीत गया !

वह तरुण समय था जब मेरा जीवन अनखिले पुष्प समान था, उसकी सुवास, उसकी शोभा, उसका मधु मेरे वक्ष में बन्दी समान बन्द थे। आज वह अनेक देशों, अनेक वेषों और अनेक स्वरों में दूर-दूर बिखर गया है।

उसे फिर संचित करने और समेटकर उसी तरह बन्द करने का मोहन-मन्त्र कौन जानता है ?

अपना हृदय अब केवल तुझ एक को भेंट देने की आशा नहीं रही। यह अब चारों दिशाओं में बहुतों को अर्पित हो चुका।

क्षति-पूर्ति

प्रिये, एक समय तेरे कवि ने अपने मन में महान् वीर-रस-भरे काव्य की रचना की थी।

शोक, में असावधान रहा, वह तेरी झनझनाती झाँझर से छू गया और एक दुःखद घटना हो गई।

वह टूटकर गीतों के खण्डों में बिखर गया और तेरे चरणों में जा पड़ा।

मेरे पुरातन युद्धों की कहानी का ऐतिहासिक काव्य-कोष हास्य की लहरों पर बहता रहा और अन्त में आँसुओं से भरकर डूब गया।

प्रिये, मेरी इस महती क्षति की पूर्ति तुम्हें करनी होगी।

मृत्यु के बाद अमर-कीर्ति पाने का मेरा अधिकार नष्ट हो गया; अब मुझे जीवन में ही अमरता देना तुम्हारे हाथ है।

मैं अपनी क्षति पर शोक नहीं करूँगा और न तुम्हें दोष दूँगा।

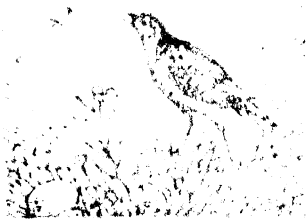

किसका दोष

जितनी ही बार आज मैं पुष्पहार पिरोने का यत्न करता हूँ, पुष्प बिखर जाते हैं। जाने यह किसका दोष है ?

तू वहाँ बैठी-बैठी आँखों की कोर से यह सब चुपचाप देख रही है।

तेरी आँखों की लाज, प्रिय ! मेरी अंगुलियाँ अधीर हो जाती हैं। यह किसका दृष्टि-दोष है ?

आज मैं जिस गीत को स्वरबद्ध करने की योजना बनाता हूँ, शब्द ही नहीं जुड़ते, स्वर ही नहीं निकलता।

तब तेरे अरुण-वर्ण ओष्ठों पर हास्य खेल जाता है। मेरे यत्न की इस व्यर्थता का क्या कारण है ? क्यों मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है और शब्द नहीं जुड़ते, यह अपनी आँखों से पूछ।

तेरे ओष्ठ सौगन्धपूर्वक बता देंगे कि मेरी आवाज कमल फूल का रसपान करने के बाद मदमाती मक्खी की आवाज़ की तरह बन्द क्यों हो जाती है।

संध्या हो गई। मैंने माला और वीणा रख दी। अब अपने दास को छुट्टी दो। सब कथा बन्दकर अब तेरे चरणों में बैठूँगा। नीरव ओष्ठों से जो काज बन पाएगा प्रिय, अब वही काज करने की अनुमति दो अपने अकर्मण्य दास को।

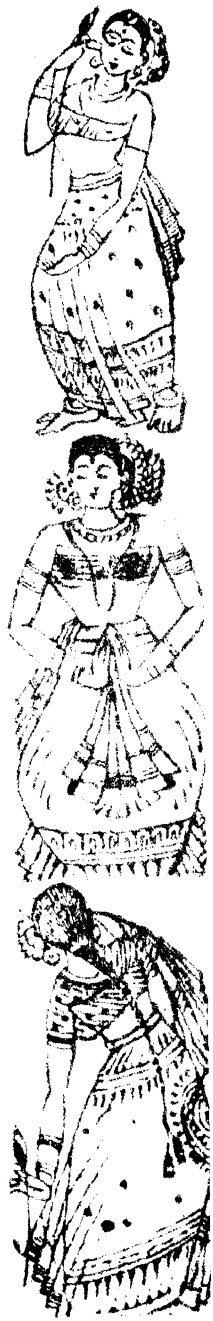

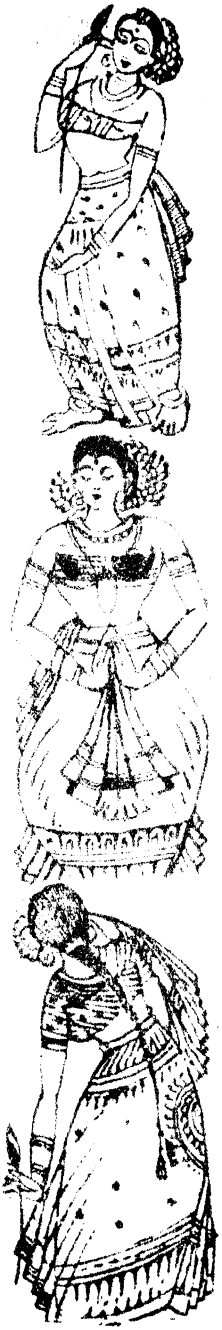

विदाई

जब भी मैं तेरे पास विदाई लेने आता हूँ तेरी आँखों में 'असम्भव' ध्वनि के साथ एक व्यंग-भरी मुस्कान छा जाती है।

विदा होने की बात मैंने इतनी बार दोहराई है कि तुझे मेरी विदाई का विश्वास उठ गया है। तुझे भरोसा है कि मैं विदा होकर अवश्य वापस आऊँगा।

सच तो यह है कि मेरा मन भी यही साक्षी दे रहा है।

कारण, कि वसन्त के मधुमय क्षण प्रतिवर्ष विदा होकर फिर-फिर वापस आते हैं, पूनो का चाँद प्रतिमास विदा होकर पुनः लौट आता है, फूल अपनी शाखों से विदा होकर प्रतिवर्ष नई आभा के साथ लौट आते हैं। इसलिए सम्भव है, मैं भी केवल फिर वापस आने के लिए ही तुझसे विदाई लेने आया हूँ। फिर भी एक प्रार्थना है। इस भ्रम को कुछ देर तो बनाये रख और मुझे इतनी सरलता से विदा होने की अनुमति न दे।

जब मैं कहूँ 'तुमसे सदा के लिए विदाई लेने आया हूँ,' मेरी बात को कुछ क्षण अवश्य सच मान लेना और एक क्षण के लिए अपनी काजल-भरी आँखों के कोर में आँसुओं की घटा छाने देना।

उसके बाद जब मैं वापस आऊँ तो मनोवांछित शरारत से मुस्करा लेना।

भीरुता

मैं गौरवगरिमा-भरे स्वरों में, तुझे अपनी गहन-गम्भीर अर्थ-भरी कथा कहना चाहता हूँ, किन्तु इस भय से नहीं कहता कि कहीं तू मन-ही-मन मुझ पर न हँसे।

इसी हेतु मैं अपने पर स्वयं हँस लेता हूँ और अपनी बात को हँसी में टाल देता हूँ।

मैं जानता हूँ मेरी बात को तू उपहास में उड़ा देगा, इसीलिए स्वयं उसे हलका कर तेरा कार्य सुगम कर देता हूँ।

मैं मन का गहनतम सत्य तेरे सामने सरल भाव से प्रकट करना चाहता हूँ, किन्तु साहस नहीं होता, इस भय से कि तू विश्वास न करेगा।

इसीलिए मैं अपनी व्यथा को मिथ्या छल में छिपा लेता हूँ और अपने अभिप्रेत लक्ष्य से सर्वथा विपरीत कह देता हूँ; तुझे अपनी प्राण-कथा सुनाने का साहस भी मैं बटोर नहीं पाता।

अपनी व्यथा को मैं स्वयं प्रत्यक्ष में उपहास का विषय बना लेता हूँ, इस डर से कि कहीं तू परोक्ष में उसका उपहास न करे।

मैं तेरे स्तवन हेतु गौरवगरिष्ठ शब्दों का प्रयोग करना चाहता हूँ, किन्तु साहस नहीं होता, इस डर से कि तू भी वैसा ही न करे।

इसीलिए मै तुझे कठोर नामों से बुलाता हूँ और अपनी क्रूरता पर अभिमान करने का अभिनय करता हूँ।

मैं तुझे कष्ट पहुँचाता हूँ, इस भय से कि कहीं तू स्वयं

दुःख का प्रयोग प्रारम्भ न कर दे।

मैं तेरे समीप मौन बैठकर युग-युग बिता देना चाहता हूँ, किन्तु साहस नहीं होता; सोचता हूँ कहीं मेरा हृदय कंठ तक न आ जाय और तुझे अपनी कथाएँ सुनाने लगे।

इसीलिए मैं व्यर्थ के प्रलाप में व्यग्र रहने का अभिनय करता हूँ और शब्दों के आवरण में मन का भेद छिपाए रखता हूँ।

मैं अपनी व्यथा से बड़ी उपेक्षा का व्यवहार करता हूँ, इस भय से कि परोक्ष में तू भी उपेक्षापूर्ण व्यवहार करेगा।

इच्छा होती है मैं तुझसे बहुत दूर चला जाऊँ, पास न रहूँ, किन्तु साहस नहीं होता। सोचता हूँ यह भीरुता तुझ पर प्रकट हो जायगी। इसीलिए तो मैं पास बैठा रहता हूँ—मन की व्यथा छिपाकर केवल बैठा रहता हूँ।

और इसीलिए अपनी व्यथा को जागृत रखने के लिए नित्य तेरे नेत्रों की ज्वाला जलाए रखता हूँ।

तापस

नहीं मित्र, तुम जो जी में आये कह लो, मैं तपस्वी नहीं बनूँगा, नहीं बनूँगा।

मैं तपस्वी नहीं बनूँगा, निश्चय ही नहीं बनूँगा, यदि मुझे तपस्विनी का संयोग प्राप्त न होगा।

यह मेरा कठिन प्रण है कि यदि वकुल-वन न मिले, मन का मीत न मिले और यदि वह तपस्विनी न मिले तो मैं तपस्वी का वेश धारण न करूँगा।

नहीं मित्र, मैं कदापि वैरागी नहीं बनूँगा, यदि उस तप का बल मेरे हृदय-तल में कोई नया संसार न बसा सकेगा, वाद्य पर नये स्वर न जगा सकेगा और संसार-रूपी बन्दीगृह के द्वार तोड़कर मुक्त प्रेम का प्रवाह न बहा सकेगा।

नहीं मित्र, मैं तापस नहीं बनूँगा, नहीं बनूँगा यदि मुझे तपस्विनी न मिलेगी।

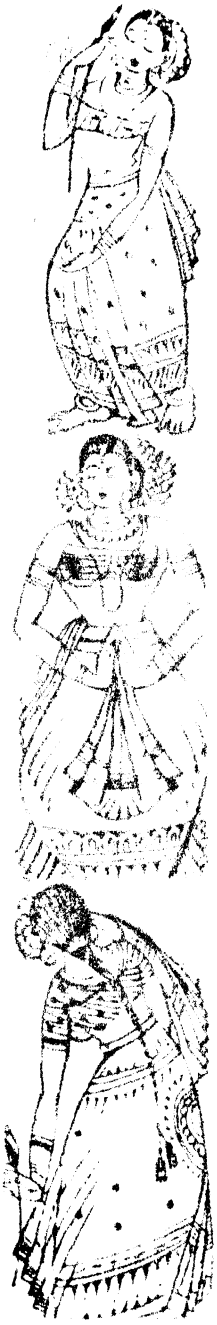

लाक्-लाज

ए पागल !

यदि तू अपना ही गृह-द्वार अपने पदाघात से निरावृत कर दे और मार्ग के तस्करों के साथ मित्रवत् आचरण शुरू कर दे, यदि तू रात्रि में अकारण ही अपना धन-कोष स्वयं ही जनपथ पर फेंक दे, विवेक को तिलांजलि दे दे, यदि तू जाने-अनजाने रास्तों पर भटकने लगे और निरुद्देश्य समय-यापन करे, यदि तुझे श्रेय-प्रेय का भेद न रहे, यदि तू आँधी में अपनी नौका के प्रवाहक पाल काटकर पतवार के खण्ड-खण्ड कर दे तो भी, ए साथी! मैं तेरा साथ दूँगा, तेरे साथ सतत मधुपान का व्यवहार रखूँगा और लोकापवाद की अवहेलना करके भी पाताल-लोक तक तेरा साथ निभाऊँगा।

मैंने तत्त्वज्ञानियों के संग सहस्रों दिनों का समय नष्ट किया है; अतिशय विवेक से मेरे मस्तक के द्वार बन्द हो गए हैं; अतिशय तत्त्व-वर्णन ने मेरी दृष्टि को क्षीण कर दिया है। न जाने कितने वर्षों तक इसी भाँति मैं केवल निरर्थक वस्तुओं का संचय ही करता रहा हूँ !

अब मैंने नवीन संकल्प से उस संचित भार की गठरी फेंक दी है। उस पुरातन ज्ञान-संचय को मैंने हवा के झोंकों में बहा दिया है। कारण, अब मैं जान गया हूँ कि इन लोक-बन्धनों से मुक्त होकर पागल बनने में ही सुख है।

तू मेरे मन की सब कुटिल दुविधाएँ नष्ट कर दे और मुझे अच्छी तरह पथ-भ्रष्ट होकर भटकने दे। प्रबल मूर्च्छना

के झोंके आने दे और मुझे धन-जनहीन होकर लोक-संग्रह की नौका के सब लंगर तोड़ मँझधार में खेलने दे।

यह संसार अतिशय योग्य, कुशल और कर्मठों से पटा पड़ा है। कुछ जन हैं जो सबके अग्रणी हैं, कुछ हैं जो ज्ञानियों के संग रहते हैं, उन सबको सुखी-समृद्ध होने दे। मुझे मूर्ख और निरुपयोगी बनने में ही सन्तोष है। पागल बनकर उन्मुक्त पथ का पन्थी बनने में ही मुझे सुख मिलता है।

आज से मैं प्रण करता हूँ, अपनी समग्र शिक्षा, दीक्षा, अभिज्ञता को त्याग दूँगा; आज से लोक-प्रतिष्ठा और यशस्विता की मिथ्या उपाधियों का परिहार कर दूँगा; समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में आज से मेरा कोई अधिकार नहीं; तत्त्व-ज्ञानी और सत्यासत्य समीक्षक होने के दर्प को तिलांजलि दे दूँगा। आज मैं अपनी आँखें अश्रुजल से रिक्त कर दूँगा और पुरानी स्मृतियों का घट खाली कर दूँगा।

आज मैं इन्द्रधनुषी रंगों से अपने हास्य को आरक्त बनाऊँगा।

आज मैं मदोन्मत्त हो कुलीनता-शालीनता की सब शृंखलाओं को तोड़कर खण्ड-खण्ड कर दूँगा और बन्धनों से विपरीत दिशा में चलने का प्रण लूँगा।

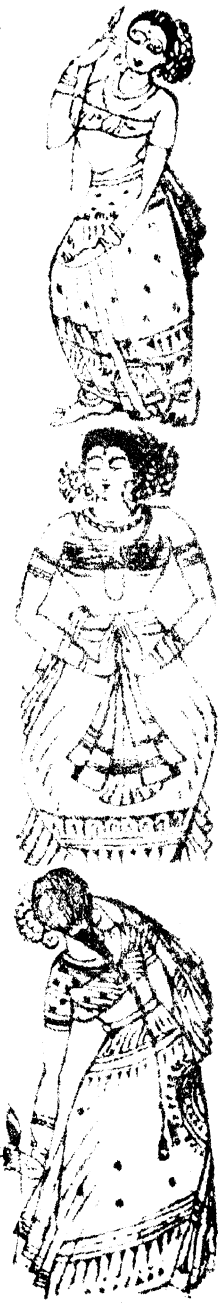

प्रेमपथ

पूज्यवर, इस पातकी युगल को क्षमा करना।

वासन्ती पवन आज वन के कुञ्ज-निकुंजों में नयी सिहरन पैदा करती बह रही है। वही पवन अपने झोंकों में पृथ्वी पर गिरे पुराने पत्तों को बहाये लिए जा रही है। आपकी पुरानी शिक्षाएँ भी उसके प्रवाह में बही जा रही हैं।

ऐसा न कहो पूज्य, कि जीवन मिथ्या है। कारण कि हमने मृत्यु के साथ मैत्री की है और केवल कुछ क्षण के लिए ही हम दोनों को अमरता का दान मिला है।

इन क्षणों में यदि राजा की सेना भी आ जाय, हम पर टूट पड़े, तो भी हम सिर हिलाकर उससे सखेद यही निवेदन करेंगे, 'सैनिक गण ! यदि आपको यह कोलाहल करना ही है तो अपनी रण-चातुरी किसी अन्य स्थान पर दिखलाओ, क्योंकि हमें कुछ थोड़े से नश्वर क्षणों के लिए ही अमरता मिली है; इन क्षणों में व्यवधान न डालो।'

इन क्षणों में यदि हमारे मित्र एवं बन्धु-बान्धव भी आकर हमें घेर लेंगे तो हम उनसे भी नतमस्तक यही आवेदन करेंगे, 'बन्धुगण, आप हमें व्यर्थ कष्ट दे रहे हैं, जिस अनन्त आकाश में हम दोनों का निवास बना है वहाँ आपके लिए स्थान नहीं है। कारण, वसन्त की ऋतु में यहाँ जब फूल आते हैं तो अनगिन समूहों में आते हैं और मधुलोभी मधु-मक्खियों के पंख भी आपस में टकराते रहते हैं। हमारा यह छोटा सा स्वर्ग, जहाँ केवल हम दो अमर आत्माओं का वास है, बहुत ही छोटा है, बहुत ही संकीर्ण है।'

अश्रुकण

जो अतिथि प्रयाण करने वाले हैं, चले जायँ; भगवान् उनकी गति में वेग दें। उनके प्रस्थान में बाधा न डालो; उनके पद-चिन्ह भी स्मृति-पटल से मिटा दो।

अपने हृदय में उन्हें ही स्थान दो और मुस्कराकर उनसे ही आत्मीयता स्थिर करो जो निकट के, सरल और सीधे हैं।

आज उन जीवों का उत्सव है जिन्हें यह भी ज्ञान नहीं कि किस क्षण उनकी मृत्यु आने वाली है।

अपने हास्य को अर्थहीन आनन्द से उजला करो, जैसे पानी की तरल तरंगों पर प्रकाश झिलमिलाता है।

अपने जीवन को महाकाल के मंच पर ऐसे ही स्थिर करने दो जैसे हरित पल्लव के अग्रभाग पर अश्रुकण नृत्य करते हैं।

अपनी वीणा के तारों पर ऐसे राग बजाओ जिनका स्वर परिवर्तनशील लय-ताल से बँधा हो।

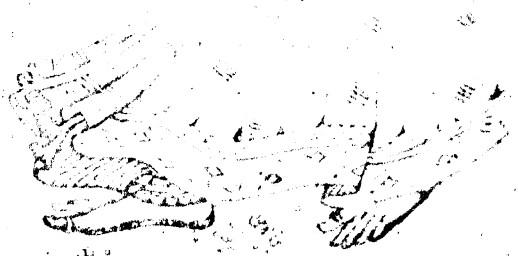

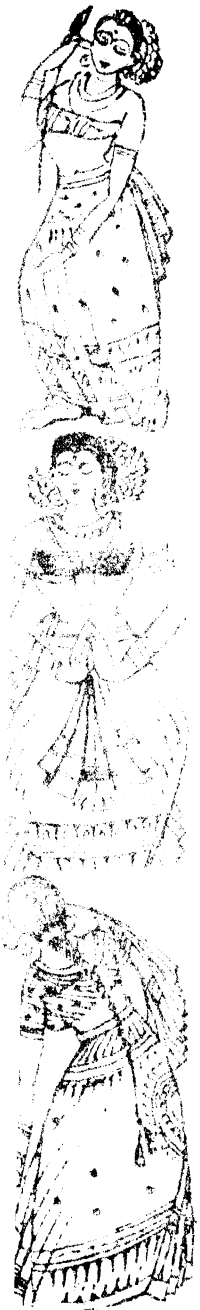

परिवर्तन

तुम मुझे छोड़कर अपने मार्ग पर चले गए।

मैंने सोचा, मैं तुम्हारे वियोग पर अश्रु बहाऊँ और हृदय के एकान्त कक्ष में अपने गीतों के स्वर्णिम तारों से तुम्हारी मूर्ति निर्मित करूँ। किन्तु, ओह मेरे दुर्भाग्य, समय कितना अल्प है !

यौवन वर्ष-प्रतिवर्ष क्षीण हो रहा है, वसन्त के पहर ढलते जा रहे हैं, फूलों की आयु सन्ध्या के साथ समाप्त हो जाती है, विवेकशील मनुष्य मुझे भी सावधान कर रहे हैं कि तेरा जीवन कमलपत्र पर ओसकण के समान है।

अब भी क्या यह सम्भव है कि मैं इन पुकारों पर कान न देकर निर्मोही पथिक को अपलक देखती रहूँ ?

आओ, बरसात की रात्रियो, अपने कोलाहलशील परा-घातों के साथ आओ। मेरे शरद सुनहरी कणों में हास्य की रेखा चमक जाय, मेरा बन्धयुक्त वसन्त चारों ओर अपना चुम्बन बिखेरता जाय।

मेरे प्रियजन ! तुम जानते हो, हम सब नश्वर हैं। एक ही प्रवासी पथिक की प्रतीक्षा में आजीवन अश्रुपात अच्छा नहीं। आयु की घड़ियाँ बहुत छोटी हैं।

एकान्त में बैठकर वियोग-भरे गीतों का गुंजन करना और करुणा-भरे गीत के स्वर बाँधना भी माधुर्य से रिक्त नहीं।

अपने दुःख को अपने वक्ष से चिपटा लेना और कदापि आश्वस्त न होने का प्रण भी गौरवास्पद है।

किन्तु आज एक नया रूप मेरा द्वार खटखटा रहा है; आँखों की भाषा में मुझे नये जीवन का रहस्य समझा रहा है।

आज मैं पुराने आँसू पोंछकर अपने पुरातन गीतों का स्वर बदलने को विवश हो गई हूँ।

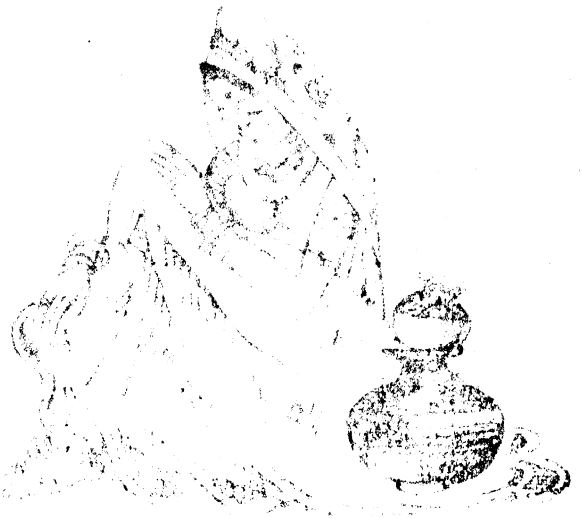

बन्दी

खोल दो सखि, खोल दो, मुझे अपने बाहुपाश से मुक्त कर दो। मैं तुम्हारी चुम्बन-मदिरा का और पान नहीं कर सकता।

कुसुम के बन्दीगृह में मुक्त पवन बँधा हुआ है और पुकार रहा है—सखि! छोड़ दो, मेरे आबद्ध प्राणों को मुक्त कर दो।

इस बन्धन में न ऊषा का आलोक पहुँचता है न आकाश का विस्तार। यहाँ पूर्णिमा की रात्रि भी अन्धकार-मयी रहती है।

सखि ! तेरे शिथिल केशपाश ने मुझे पूरी तरह ढक लिया है, तेरे आलिंगन में आकर मुझे जीवन का भय हो गया है। मेरा जीवन मुक्त पवन चाहता है।

हृदय-धन

मैं उसके हाथों को हाथ में थाम उसे आलिंगन में बाँध लेता हूँ।

अपनी अंजलि को उसके सौन्दर्य से भर लेता हूँ। उसके अधरों की मुस्कान का चुम्बनों से अपहरण करता हूँ और उसकी कजरारी आँखों के मादक आसव को अपनी आँखों से पी लेता हूँ।

किन्तु ओह, उसे फिर भी नहीं पाता हूँ।

आकाश की नीलिमा को आकाश से कौन छीन सकता है ?

मैं सौन्दर्य को भुजपाश में बाँधने का प्रयास करता हूँ, किन्तु वह मेरे बन्धन में नहीं आता, केवल जड़ देह ही मेरी भुजाओं के आलिंगन में रह जाता है।

पराजित और श्रान्त होकर मैं लौट आता हूँ।

जिस पुष्प को केवल अदृश्य आत्मा ही स्वीकार कर सकती है उसे मेरे हाथ कैसे बाँध सकते हैं ?

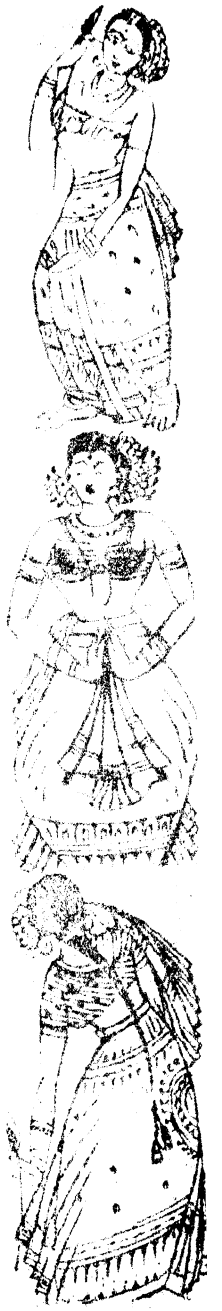

पूर्ण मिलन

सखि ! मैं तेरे मिलन की, जो मिलन केवल मृत्यु-समान है, निशि-दिन याचना करता हूँ।

मुझे बाँध ले, मेरा सर्वस्व छीन ले, मेरी लज्जा, मेरे वस्त्र, मेरा आवरण, सब छीनकर नष्ट कर दे ! मेरी आँखों से नींद ले ले, और निद्रा के स्वप्न छीन ले !

मेरे सम्पूर्ण जागृत विश्व का अपहरण कर ले, मेरे अनन्त जीवन-मरण पर अधिकार कर ले।

विश्व-वीथियाँ जब पूर्णतया निर्जन हो जायँ, सूर्य-चन्द्र के दीप निर्वाण पा चुके हों, तब तेरे और मेरे निरावृत नग्न प्राणों का सीमाहीन काल तक मिलन होगा।

क्या यह दुराशा-मात्र है अथवा मन का झूठा स्वप्न है? नहीं, कदापि नहीं, तुझे छोड़कर मेरा ऐसा पूर्ण मिलन किससे हो सकता है !

दो बहनें

दोनों बहनें जब भी पानी भरने जलाशय पर जाती हैं, हँसती-मुस्काती क्यों जाती हैं ?

वे देखती हैं कि एक पथिक पथप्रान्त में चुपचाप खड़ा है। इसी कुंज की निविड़ छाया में वे आती हैं। उनके कटाक्ष का लक्ष्य क्या होता है, कौन जाने !

दोनों बहनें जब भी पानी भरने जाती हैं तो वे हँसती-मुस्काती क्यों जाती हैं ?

दोनों बहनें जब इस स्थान से पानी भरने जाती हैं तो कानों में जाने क्या कुछ कहती जाती हैं, जाने कौनसी गुप्त मन्त्रणा करती हैं ! दोनों इसी स्थान पर आती हैं। किसके मन में कौन कथा, कौन कल्पना भरी है, कौन जाने !

अचानक ही उनकी गागर छलक जाती है और पानी छलछला उठता है। हो-न-हो उन्हें मालूम हो गया है कि जब भी वे पानी भरने यहाँ से गुजरती हैं, वृक्षों की ओट में खड़े हुए पुरुष का आकुल हृदय चंचल हो उठता है।

दोनों बहनें जब भी पानी भरने को जाते हुए इस स्थान पर पहुँचती हैं तो कौतुक-भरी आँखों से एक-दूसरे को देख-कर मुस्करा उठती हैं। उनके चंचल चरणों में हँसी छल-छला उठती है। उसी समय वृक्ष की ओट में खड़े हुए श्रान्त पथिक का मन बेकल हो उठता है। कौतुक-भरे चंचल पैरों से वह चकित-सा खड़ा रह जाता है। उसी समय कलस को छूकर किसी के कंगन झनकार कर उठते हैं।

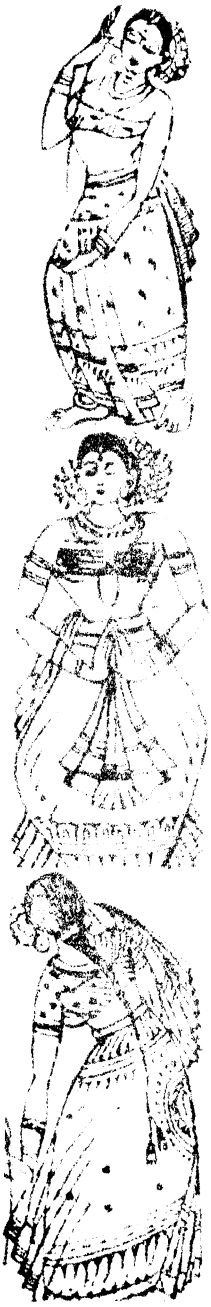

आहत

अब अपना अन्तिम गीत समाप्त कर, मेरे साथ चल !

रात्रि के इन क्षणों को भूल जा, अब रात्रि नहीं रही ।

किन्तु, कौन है जिसे मैं अपने हाथों में बाँधना चाहता हूँ ? भला स्वप्नों को कौन बाँध सकता है !

मेरी भुजाएँ महाशून्य को मेरे हृदय से बाँधने का यत्न करती हैं । इससे मेरा हृदय आहत हो जाता है ।

दुराकांक्षा

दीपक क्यों बुझ गया ?

मैंने इसे बहुत यत्न से रात-दिन जागकर ढका था, तभी यह बुझ गया।

फूल क्यों मुरझा गया ?

मैंने चिन्तित, भयाकुल हो इसे छाती से चिपटाकर रखा था। ओह, तभी यह मुरझा गया।

नदी की जलधारा क्यों सूख गई ?

मैंने इसे चारों ओर से समेटकर रखा था, जिससे इसका प्रवाह असीम काल तक बना रहे, तभी यह जल-धारा सूख गई।

वीणा की यह तार क्यों टूट गई ?

अतिशय उद्वेग और तन्मयता से कसकर मैंने इन तारों से स्वर निकालने की योजना बनाई थी, तभी तो वीणा की तार टूट गई।

भर्त्सना

तुम अपने कटाक्ष से व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार क्यों करती हो ?

मैं आँगन की सीमाभित्ति के पास से अपने गृह-द्वार की ओर आ रहा था।

मैंने तुम्हारे बाग से एक भी फूल नहीं तोड़ा, एक भी फल नहीं लिया। मैं तो जाते-जाते तुम्हारे गृह-द्वार के पास घनश्यामल तमाल तरु की छाँह में, नत-शिर, करबद्ध, घड़ी-भर विश्राम लेने रुक गया था। मैंने तुम्हारे पुष्प-वन का एक भी पुष्प नहीं तोड़ा। मैं तो पथप्रान्त पर सामान्य पथिक की तरह थोड़ी देर के लिए ही रुका था।

तुम व्यर्थ ही मेरा तिरस्कार क्यों करती हो ?

हाँ, मेरे पैर थक गए थे, आषाढ़ के मेघ धारा-प्रवाह बरसने लगे थे, पवन के झोंके में झूमते हुए वेणुओं का नृत्य हो रहा था। आकाश में घनघटा ऐसे भाग रही थी जैसे पराजित सैन्यदल शिविर की ओर भागता है। मेरे पैरों में थकान भरी थी। पथ का पंक मेरे दोनों पैरों में चिपटा था।

न जाने तुमने मेरे लिए क्या-क्या सोचा होगा ? उस समय तुम मुक्तकेशा अकेली वातायन पर न जाने किसकी प्रतीक्षा में बैठी थी !

विद्युत् के क्षणिक आलोक ने तुम्हारी आँखों में प्रकाश भर दिया था।

मैं तो अँधेरे में खड़ा था। तुम मुझे देख लोगी,

कैसे जान पाता ? न जाने तुमने मेरे लिए क्या-क्या सोचा होगा !

दिन बुझ गया है, आकाश मेघाच्छन्न है, किन्तु बरसात क्षण-भर को रुक गई है। वेणु-वन का पवन भी थम गया है। मैं तुम्हारी छाया छोड़कर चला जाता हूँ।

संध्या हो गई है, अपना द्वार रुद्ध कर लो, मैं अपनी राह पर जा रहा हूँ। दिन बुझ गया है, आकाश मेघाच्छन्न है।

व्यर्थ ही तुम नीरव कटाक्ष से मेरा तिरस्कार करती हो। इस पथ से दूर उन वृक्षों की छाया में मेरी कुटी है। संध्या समय उस कुटी में ध्रुवतारा समान दीपक जल रहा है। मैं इस कंगाल वेश में किसी के घर के द्वार पर जाकर कोई दान नहीं करना चाहता। तुम व्यर्थ ही अर्थ-भरी दृष्टि से मेरा नीरव तिरस्कार करती हो।

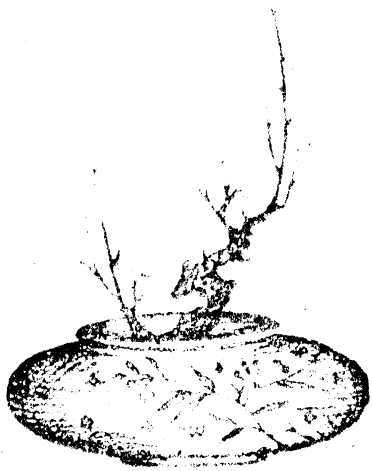

विरह

जब तुम गये तभी मेरी दोपहर हो गई।

मेरे आकाश का सूर्य तभी रौद्र रूप हो गया।

घर के सब काम समाप्त कर मैं अकेला घर के वातायन पर बैठा था। चैत्र मास में हवा के झोंके दूर-दूर के खेतों की गन्ध लेकर मुक्त द्वार पर आ रहे थे; दो कबूतर एक रट से घ-प की रट लगा रहे थे, केवल एक भ्रमर चैत्र मास के नाना खेतों का समाचार लेकर आया था और गुन-गुना रहा था।

पथ पर कोई पथिक न था। मध्याह्न की जलती धूप से बचकर सारा गाँव छाया में विश्राम कर रहा था। वृक्षों के झुरमुटों में अविश्रान्त स्पन्दन उठ रहा था। मैं आकाश में अपलक देखती हुई नीले अक्षरों में अपने किसी परिचित नाम के अक्षरों का जाल बुन रही थी, और सारा गाँव तपते मध्याह्न में क्लान्त, कातर था। पथ पर कोई पथिक न था।

मैं अपनी वेणी गूँथना भूल गई थी। अलसाए पवन के झोंके मेरी मुक्त वेणी से खेल रहे थे।

गाँव की नदी का पानी वृक्षों की छाया से ढके तट से छूता हुआ कलकल करता बह रहा था।

आकाश शुभ्र अलस मेघों से भरा था।

मैं अपनी वेणी बाँधना भूल गई थी।

जब तुम विदा हुए तो मध्याह्न का समय था।

मार्ग की धूल घाम से तप रही थी और खेत हाँफ रहे थे। कबूतर घने कुंजों में घूँ-घूँ की रट लगाए बैठे थे।

मैं अकेली शून्य शयन-गृह के झरोखे में बैठी थी। दोपहर का समय था।

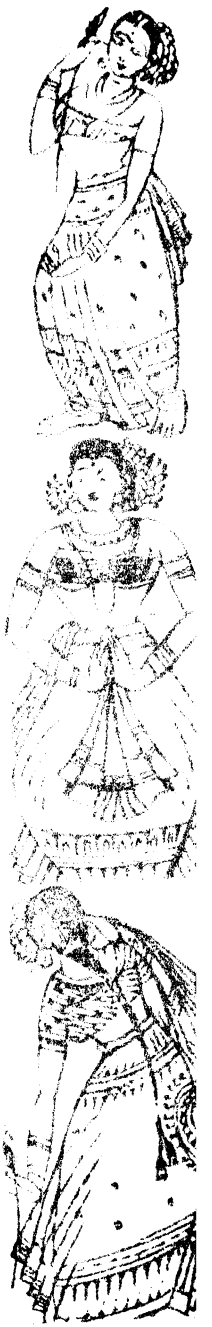

किधर ?

संध्या हो गई, बाजार बन्द हो गया। अब तू अपनी झोली उठाए इतने वेग से किधर जा रहा है ?

वे सब अपना भार लेकर वापिस घर आ गए हैं। एकादशी का चाँद गाँव के वृक्षों पर से झाँकने लगा है। कोई नदी पार की नाव को पुकार रहा है। उसकी प्रतिध्वनि नदी के श्यामल जल को छूती हुई किनारे के उन कुंजवनों तक पहुँच रही है, जहाँ सारस-युगल सो रहे हैं।

जब बाजार बन्द हो गया तो तू अपनी झोली उठाकर तेजी से किधर जा रहा है ?

पृथ्वी की पलकों को निद्रा ने झुका दिया है। कौओं के घोंसलों का कलरव भी शान्त हो चुका और वेणु-कुंजों में से भी कोई शब्द नहीं आ रहा। झाड़ियों में से केवल झिल्ली स्वर सुनाई दे रहा है। वायु भी शान्त हो गई है।

खेतों से वापिस आए श्रान्त कृषक शयन-हित अपने घर के आँगन में चटाई बिछा रहे हैं। संध्या-प्रदीप की शान्त ज्योति जगमगा रही है।

संसार की सब चेष्टाओं का अन्त हो गया। ऐसे समय तू अपनी झोली उठाकर अधीर, चंचल वेग से किधर जा रहा है ?

स्थायी अस्थायी

हे संसार, हे लता ! मैंने तेरा एक फूल तोड़ा था।

उसकी माला को मैंने हृदय से लगाया तो मेरी छाती में कांटा खुभ गया।

दिन ढलने और अँधेरा होने पर मैंने देखा कि तुम्हारा फूल तो मुरझा गया था किन्तु मेरे हृदय की कण्टक-जन्य व्यथा अभी हरी थी।

ए दुनिया, तुम्हारे पास अनेक गन्ध, मधु और कोमलता-भरे कुसुम हैं।

किन्तु, आज इस अंधेरी रात में मेरा फूल चुनने का समय बीत चुका है, और अब मेरे पास केवल कण्टक-विद्ध हृदय की व्यथा ही शेष है।

व्यक्त प्रेम

किसने निकट बुलाकर मेरी लज्जा का आवरण दूर कर दिया ? कौन हृदय-द्वार बन्द कर मुझे बाहर खींच लाया और अन्त में पथ पर मेरा परित्याग कर दिया ?

मैं घर के काम-काज में व्यस्त सब गृहस्थ स्त्रियों के बीच अपने में ही खोई एक सामान्य गृहिणी थी ।

न जाने क्यों तुमने मुझे ही चुन लिया और मुझे साधारण पारिवारिक जीवन की शीतल छाया से दूर खींच लिया ।

अप्रकट प्रेम बड़ा पवित्र होता है । वह अन्धकार-भरे हृदय-तल में माणिक के समान प्रज्वलित होता है ।

तू नारी-हृदय को टुकड़े-टुकड़े कर उसकी थाह पाना चाहता था । लाज से थर-थर काँपते कातर नारी-हृदय को तूने उसके आवरण से बाहर खींच लिया ।

शेष सभी कुलवधुओं के लिए उनकी दुनिया वैसी ही बनी हुई है । वही वसन्त, शरत, वही चम्पा की शाखा, वही छायापथ, वही हास्य-रुदन, पूजा, दीप, सब-कुछ वही है । कोई उनका हृदय-हार लेकर उनकी थाह पाने का यत्न नहीं करता, उनके अन्तरतम में किसी की दृष्टि नहीं पहुँच पाती और स्वयं वे भी अपने अन्तर का मर्म नहीं जानतीं ।

यूँ ही रोते-हँसते, बातें करते या घर का काम करते-करते उनका दिन बीत जाता है । प्रतिदिन वे मन्दिर

में जाती हैं, घर का दीपक जलाती हैं और घाट से गागर भर लाती हैं।

मैं ही आज भग्न-पुष्प की तरह राजपथ की धूलि में मिली हूँ।

अब तुम्हारा मार्ग तो तुम्हारे सामने खुला है, तुम उस पर वापिस जाने को स्वतन्त्र हो। किन्तु, मेरा पथ अवरुद्ध हो गया। मैं धूलिसात् हो गई। मेरे वापिस जाने की आशा नहीं रही।

यह तूने कितनी निदारुण भूल की? एक अभागिनी रमणी के हृदय का आवरण खोल दिया। अब शतलक्ष आँखें कौतुक से मेरे अनावृत कलंक का पान करेंगी।

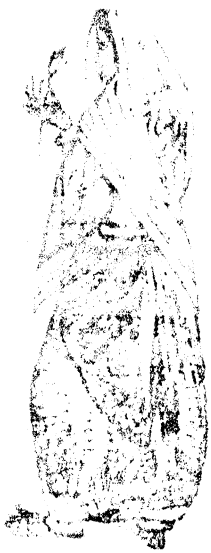

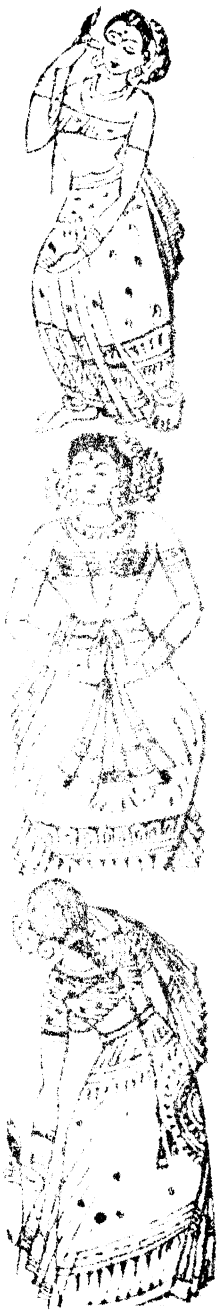

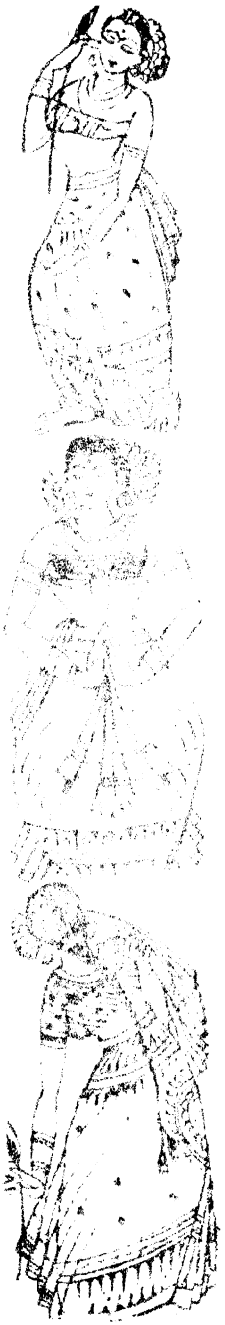

नारी का दान

एक प्रभात की स्वर्ण-वेला···

कुंज-तले एक चक्षुहीन बालिका कमल के पत्ते पर पुष्प-हार सजाकर लाई।

मैंने वह पुष्पहार गले में धारण कर लिये, कृतज्ञता से मेरी आँखों में आँसू भर आये और मैंने कदम्ब की छाया में खड़ी चक्षुहीन बालिका से कहा :

सुकुमारी, तू भी अपने पुष्प-हार के ही तुल्य है। पुष्प को भी अपने रूप का बोध नहीं और नेत्र न होने से तू भी अपने सौन्दर्य-बोध से वंचित है।

कस्तूरी-मृग

मैं स्वर्णमृग का व्याध हूँ।

मित्र, भले ही हँसो, मैं अपने उस स्वप्न का पीछा नहीं छोड़ूँगा जो मुझे छलकर चला गया है।

मैं अब पर्वतों पर, पर्वत-घाटियों पर, अज्ञात प्रदेशों में, नामहीन वन-ग्रामों में घूम रहा हूँ, क्योंकि मैं स्वर्ण-मृग का शिकारी हूँ।

तुम बाज़ार में आते हो और अपने मन की चीज़ें लेकर घर लौट जाते हो, किन्तु मुझे सदा चंचल पवन के चमत्कारी हाथ ने छू लिया है—कब और कहाँ, इसका मुझे भी ज्ञान नहीं है।

अब मेरे मन में कोई भी दूसरी कामना नहीं, अपना घर-घाट और सारा धन-सामान मैं पीछे छोड़ आया हूँ।

मैं अब पर्वतों, घाटियों और अज्ञात वन-ग्रामों में भटक रहा हूँ—कारण, मैं स्वर्ण-मृग का व्याध हूँ।

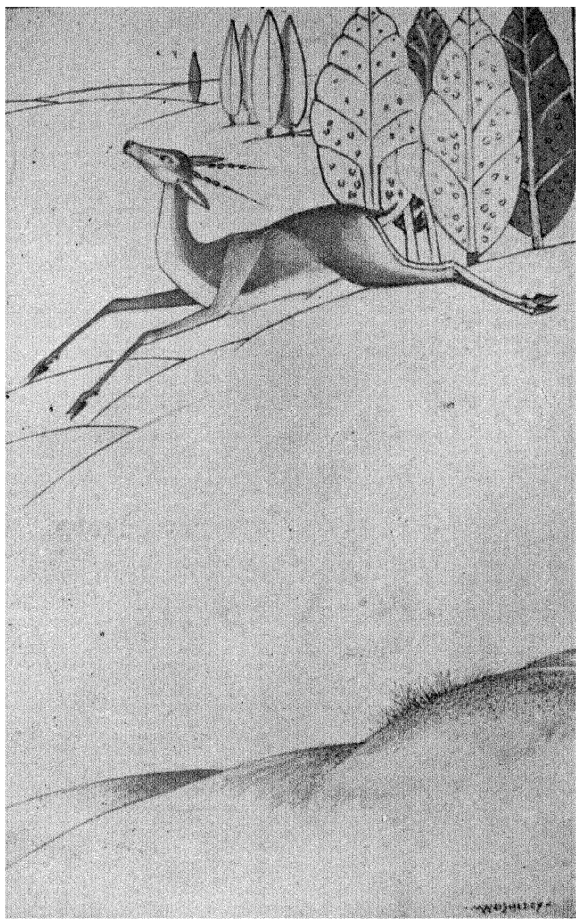

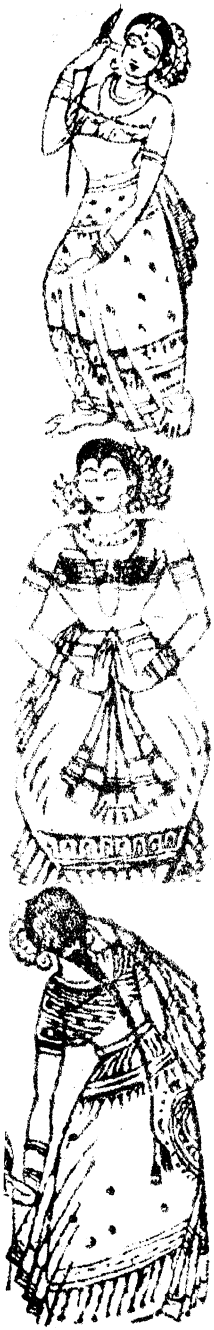

विदाई-काल

शान्त, मेरे हृदय, शान्त रह, धैर्य धर, वियोग का समय मधुर होने दे ! यह वियोग मृत्यु का सन्देशहरन हो, विच्छेद भयाकुल न हो, केवल लक्ष्य-प्राप्ति का हो, पूर्णता का हो।

इसकी स्मृति केवल सुखद हो। व्यथा का प्रयोजन केवल गीतों के सृजन में पूर्ण हो जाय, तट का प्रयोजन बहती नाव को विश्रान्ति देना ही रहे !

इस खेल का विराम नये खेल के प्रारम्भ का सूचक हो, वासना के चरम शाम्य में हो; और विस्तृत नभ की विश्रान्ति पक्षी के घोंसले में हो !

वियोग के इन क्षणों में दिवसान्त का कोमल हाथ मानव के मस्तक पर पड़े, पलकों में नींद भर जाय और हृदय-रूपी पत्रपुट के एकान्त से रात्रि-पुष्प की कली फूट पड़े।

उस समय आरती के शंखनाद में हास्य न हो, अश्रु न हो, केवल वैराग्यमय विशाल विश्राम की ध्वनि निकले।

प्रभात में जो पक्षी कलरव करते आकाश में उड़े थे वे सब इन क्षणों में यहाँ आकर विश्रान्ति लें, प्रभात में जिन कलियों ने अँगड़ाई ली थी, वे फिर आँखें मूँद लें, उदय-काल में पवन की जो तरंगें चंचल हो उठी थीं वे थककर थम जायँ और असीम नभ के विस्तीर्ण वक्ष पर नीरव, नक्षत्र-लोक का उदय हो !

हे महासुन्दर शेष, हे विदाई के क्षण, हे सौम्य

विषाद, क्षण-भर धैर्य धरो, आँखों का जल पोंछ लो और आशीर्वाद दो !

क्षण-भर ठहर, विदाई के क्षण ! तेरे यात्रा-पथ पर निष्कम्प प्रदीप रख, मैं निःशब्द आरती कर लूँ, क्षण-भर ठहर !

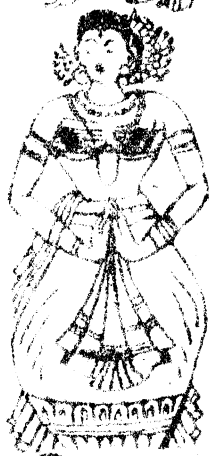

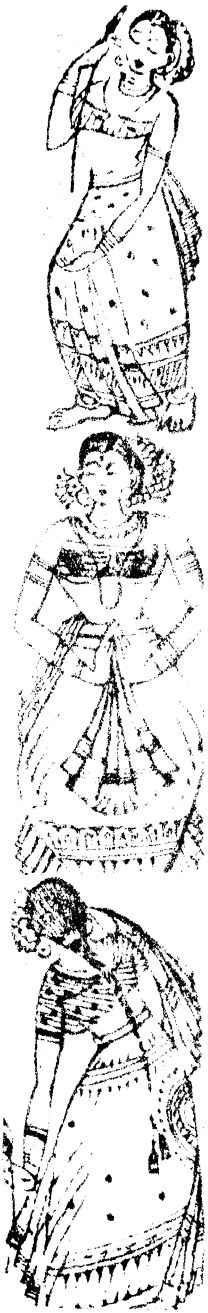

स्वप्न

दूर, बहुत दूर, क्षिप्रा नदी के पार स्वप्न-लोक में मैं अपने पूर्व-जन्म की प्रिया को खोजने निकला।

वह जन-शून्य वन्य-वीथिका थी। सन्ध्या की रश्मि-रेखा बंकिम, संकीर्ण, दुर्गम, निर्जन पथ के किनारे प्रिया का भवन था। प्रिया के कपोत-युगल घर के ही चारों ओर उड़ रहे थे। एक मयूर निद्रा में मग्न बैठा था।

इसी समय हाथ में दीपशिखा लेकर मेरी मालविका धीमे-धीमे झुकी। मानो वह लक्ष्मी की मूर्ति थी! उसके अंग-अंग में कुंकुम गन्ध थी, उसके सर्वाङ्ग से व्याकुल निःश्वास निकल रहे थे। वह दीपक को द्वार के पास रख-कर प्रतिमा की भाँति मेरे सामने खड़ी हो गई और मेरे हाथ पर हाथ रख नीरव आँखों से मेरी ओर देखते हुए पूछने लगी: "कुशल तो है बन्धु!" मैंने उत्तर देने का यत्न किया। किन्तु मेरे शब्द खो गए थे। मानो भाषा ही भूल गया था। शून्य मन से केवल खड़ा रहा। हम दोनों अपने भावों का अवगाहन करते रहे, आँखों से अबाध अश्रु झरते रहे और नयन निःस्पन्द हो गए।

मैं सोचता रहा, सोचता रहा, अपना नाम भी मेरी स्मृति से उतर गया था।

न जाने इसमें क्या छल था!

उसकी आँखों में आँसू चमकने लगे। उसने अपना कोमल हाथ मेरे दक्षिण हाथ पर रख दिया। जैसे सन्ध्या-काल का गगन-विहारी विहंगम तट की आशा में मन्द पड़

गया हो।

वह नीचे झुकी, उसके व्याकुल, उदास, निःशब्द निःश्वास मेरे निःश्वास से टकरा गए।

रजनी का अन्धकार उज्जयिनी के लुप्त प्रकाश में एकाकार हो गया। क्षिप्रा नदी के तट पर स्थित शिवमन्दिर की आरती बन्द हो गई और प्रबल झंझावात में द्वार का दीपक बुझ गया।

मानसी

नारी ! तू केवल परम पुरुष की कला-कृति नहीं हो; पुरुष भी अपने अन्तःसंचारि सौन्दर्य से तुझे रूप-सुषमा देता है।

कविगण अपने उपमा-सूत्रों से तेरी रूप-रेखा बुनते हैं। प्रस्तर-शिल्पी तेरी पाषाण-मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठान कर तेरे रूप-सौष्ठव को अमर बनाते हैं।

समुद्र से मोती, पृथ्वी से स्वर्ण, मधुवन से असंख्य पुष्प संचय कर पुरुष तेरा शृंगार करता है। तेरे पदतल आरक्त करने को असंख्य वनकीट प्राण देते हैं।

पुरुष तुझे लज्जा देता है, आभूषण देता है, आवरण देता है और दुर्लभ गुप्त निधि की तरह तुझे दुष्प्राप्य बना देता है।

उसकी सम्पूर्ण प्रदीप्त वासनाएँ तुझ पर समर्पित होकर तेरे रूप का निर्माण करती हैं।

तेरा अर्द्ध भाग मानवी है और शेष अर्द्ध कल्पना। केवल विधाता की ही कृति नहीं, तुम नारी, मनुष्य ने भी तेरी रूप-सुषमा के निर्माण में भाग लिया है।

कागज की नाव

मुझे आषाढ़ मास के वे सुन्दर क्षण याद आते हैं जब सरोवर के किनारे बैठा मैं कागज की नाव से खेला करता था।

दिन-रात वृष्टि पड़ती थी, खेलने को कोई साथी नहीं था, अकेला बैठा-बैठा मैं अपने से ही खेलता था।

अकस्मात् घटाटोप मेघ घिर आये थे, आँधी वेग से चल पड़ी थी और जल की अजस्र धाराएँ उमड़ पड़ी थीं।

जलाशय की तरंगें उन्मत्त हो उठी थीं, मेरी नाव सरोवर के तूफान में डूब गई थी।

उस दिन मैं मन में सोचने लगा, यह दुर्भाग्यपूर्ण आँधी अवश्य ही मेरी नाव को डुबाने के लिए आई थी, इसे त्रिभुवन में कोई और दूसरा काम नहीं रह गया था क्या ?

आज फिर आषाढ़ में मैं अकेला घर में बैठा निरुद्देश्य दिन काट रहा था और उन नाना खेलों की याद में खो गया था जिनमें दैव को दोषी ठहराया जाता है।

मैं अपने दुर्दैव को कोस रहा था और उसकी वंचनाओं पर मन-ही-मन जल रहा था। उसी समय मुझे फिर उस कागजी नाव की याद आ गई जो जलाशय में डूब गई थी।

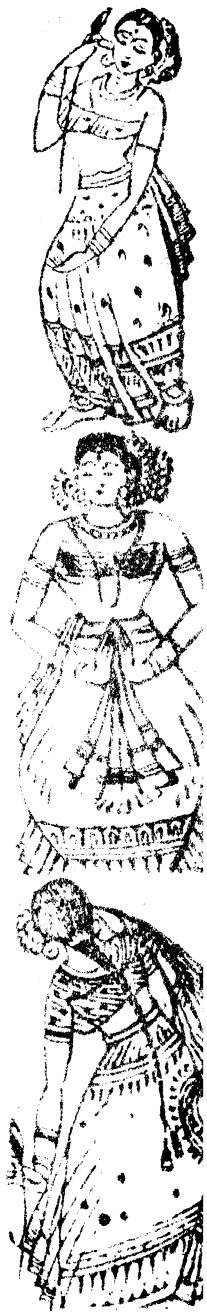

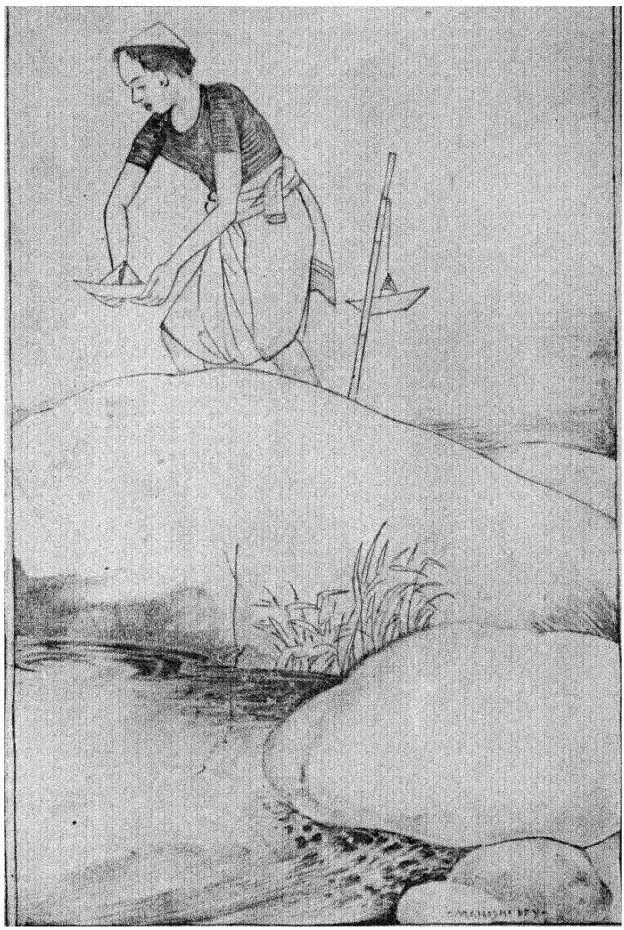

अशेष

क्या तूने मुझे एक बार फिर बुलाया है ?

मेरे सब काज पूरे हो गए। माधवी वन को जगाते असंख्य क्षण प्रत्यूषनवीन चले गए।

शाम हो गई है, प्रिया की आग्रहशील भुजाओं के समान मेरी थकान ने मुझे परिवेष्टित कर लिया। पुष्प के पराग से प्रखर प्यास बुझाते अनेक मध्याह्न बीत गए। मैदान के पश्चिम ओर म्लान हँसी हँसते अपराह्न का भी अवसान हो गया। ऐसे समय उस पार उतरने को जब मैंने नाव पर पैर रखा तो क्या तूने मुझे फिर बुलाया ?

हे मोहिनी, हे निष्ठुरे, कठोर स्वामिनी ! मैं दिन-भर तेरे द्वार पर खड़ा रहा हूँ, अब तू मुझसे मेरी रात्रि का भी अपहरण करना चाहती है ?

जगत् में सब सीमाओं का कहीं-न-कहीं शेष है। उन सब सीमाओं का मर्म छिन्न कर तेरा आदेश आया है; तूने मुझे एक बार फिर बुलाया है।

दक्षिण समुद्र-पार के प्रासाद-द्वार की सदा जागृत रानी !

क्या संध्या-काल में शान्त स्वर, क्लान्त ताल में वैराग्य-वाणी नहीं फूटती ? क्या तेरे मूक वन में तेरी अँधेरी शाखों पर पक्षी नहीं होते, निःशब्द के दूत सितारे नहीं उठते ? क्या तेरे लता-वितान तले पुष्पदल मृत्यु के कोमल स्पर्श के साथ मुरझाकर चुपचाप धूल में नहीं गिरते ?

हे अश्रान्त शान्तिहीन ! दिवस का अन्त हो गया। अब भी क्या तेरा आह्वान आया है ?

प्रिया की उदास आँखें व्यर्थ ही मेरी प्रतीक्षा में रोती रहेंगी और निर्जन घर के एकान्त में अकेला दीपक जलता ही रहेगा।

दिन-भर के थके किसान नौकाओं पर चढ़कर घरों को वापिस जा रहे हैं, उन्हें जाने दो। मैं ही अकेला अपने स्वप्नों को पीछे छोड़कर तेरे आह्वान का अनुसरण करता हुआ तेरे समीप आ रहा हूँ।

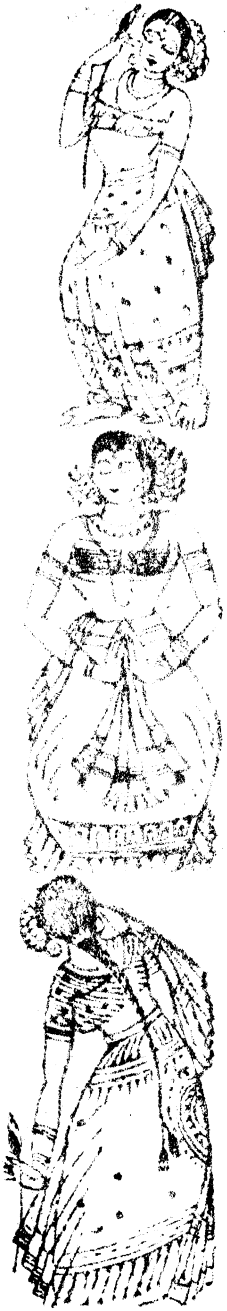

दिन शेष

अतिथिशाला भंग हो गई । शाला की जर्जर दीवारों पर एक जीर्ण वटवृक्ष था ।

प्रखर धूप से तप्त पथ पर मैं घूमता रहा, इस आशा से कि सन्धि-वेला में वृक्ष की छाया पाकर विश्राम करूँ ।

दूर तक बिछे खेतों में काम कर कृषक गाँव में वापस आते तो यहाँ बैठते ।

वर्षों तक न जाने कितने काल से, कितनी सन्धि-वेलाओं में थके पथिक अपने पैरों को ठंडे जल से धोने वहाँ आते रहे थे । स्निग्ध शीतल चन्द्र-ज्योत्स्ना से प्रभासित पथिकशाला के प्रांगण में बैठकर वे सब विचित्र देशों की कथाएँ कहा करते थे । पूर्व दिशा से उदय होता हुआ चाँद भी वृक्ष के पत्तों से झाँककर विस्मय से उनकी बातें सुना करता था ।

प्रभात में वे पथिक पूर्ण विश्रान्ति के बाद पक्षियों का स्वागत-गीत सुनते हुए जागते और पथ-प्रान्त की वसलता फूलों के बोझ से डोल-डोलकर उनका अभिनन्दन करती थी ।

किन्तु जब मैं वहाँ गया तो किसी जलते दीप ने मेरी प्रतीक्षा नहीं की । बहुत समय पहले भूल से जलते रह गए दीपक की दीवारों पर जो काली छाया पड़ रही थी वही अन्धे की खोखली आँखों के समान मेरी ओर घूर-घूरकर देख रही थी ।

पास के सूखे तालाब की झाड़ियों से चिनगारियाँ

उठ रही थीं और वेणु-वृक्षों की भयानक लम्बी-लम्बी पर-छाइयाँ रास्ते पर पड़ रही थीं।

सन्ध्या-समय यात्रा के अवसान पर भी मैं किसी का अतिथि न बन सका। हाय रे, मैं नितांत थका हुआ हूँ।

विजन दीर्घ रात्रि ! हाय रे क्लान्त काया ! मैं किसी का अतिथि न बन सका !

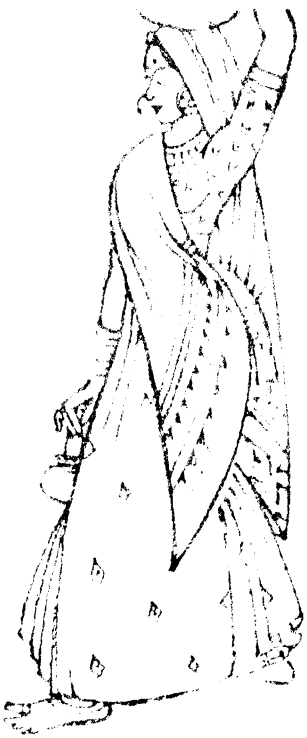

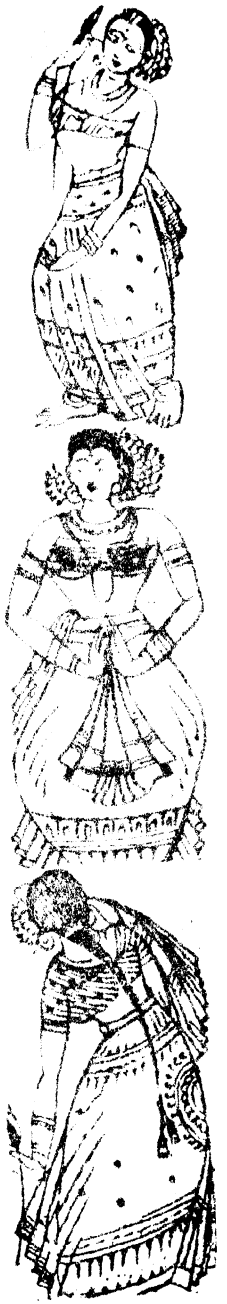

पारस-मणि

एक दीवाना पारस-मणि की खोज में लगा था। उसके मस्तक पर बृहत् जटाएँ बढ़ गई थीं, उसके धूल से भरे भूरे बालों में लटें पड़ गई थीं, सारा देह कंकाल के समान कृश हो गया था, ओष्ठ घर के निरुद्ध कपाट के समान बन्द हो गए थे। रात-दिन उसकी आँखों में पारस-मणि के अन्वेषण की तीव्र ज्वाला जला करती थी। उसके दो नेत्र रात के खद्योत-समान अपने ही प्रकाश में उड़ते हुए पारस की खोज में पागल हो रहे थे।

उसके समक्ष अथाह अपार सागर गरज रहा था। सागर की गरजती लहरें समुद्र के गर्भ में छिपे रत्न-भण्डार की चर्चा कर रही थीं और उन अन्वेषकों पर हँस रही थीं जो सागर के घोष का मर्म नहीं समझ सकते थे।

अब उस दीवाने को पारस-मणि पाने की आशा नहीं रही, फिर भी वह अपनी खोज बन्द करके विश्राम नहीं लेता था। उसकी आशा तो लुप्त हो गई थी, किन्तु पागलों की तरह खोजने की आदत लुप्त नहीं हुई थी।

एक दिन जब वह इसी तरह पागल-सा पारस-मणि ढूँढ़ रहा था एक गाँव का बालक उस दीवाने के पास आकर बोला, 'हे संन्यासी, इन कंकड़ों में क्या खोज रहे हो ? यह सोने की कड़ी तुम्हें कहाँ से मिली ?'

संन्यासी यह सुनकर चौंक उठा। उसे पता ही न था कि उसकी लोहे की कड़ी कब सोने की हो गई थी। यह कैसा चमत्कार था ! आँख मलकर उसने देखा, सचमुच

यह स्वप्न नहीं था। किन्तु हाय, उसे यह पता न लगा कि कब यह चमत्कार हो गया था !

कपाल पर हाथ रखकर वह भूमि पर बैठ गया और अपनी लांछना करने लगा—'आह, मुझे यह ज्ञान क्यों नहीं हुआ कि किस पारस से छूकर मेरी कड़ी सोने की बन गई।' पागलों की तरह पुकार उठा वह—'पारस पत्थर कहाँ है, हाय कहाँ है ?'

इस निराशा में उसकी कामना का, समस्त आशाओं का और पारस पत्थर पाने के उत्साह का अन्त हो गया था। फिर भी वह पारस-मणि की खोज में चल पड़ा, केवल अभ्यासवश। वह समुद्र-तट के प्रत्येक पत्थर को उठाता था, अपनी कड़ी से छुआता और फेंक देता था। वह यह भी नहीं देखता था कि उसके स्पर्श से लोहे की कड़ी स्वर्णमयी बन गई या नहीं। इसी भाँति उस दीवाने को एक दिन पारस-मणि मिली और खो गई।

वह उस विरही विहंग के समान था जो अभागा दिन-रात वृक्ष की शाख पर बैठा प्रेमी को पुकारता है, उसे देख नहीं पाता, फिर भी आशाहीन, श्रांतिहीन प्रतिदिन पुकारता, एकमात्र पुकारता ही चला जाता है।

समुद्र भी अन्य सब कामों से विरत हो आकाश में तरंगें उछालता हुआ न जाने किसकी कामना में अविरत हाय-हाय करता है, लेकिन उसे नहीं पाता, तब असीम शून्य में बाहु उठाकर खड़ा रहता है। यही उसका व्रत है।

संपूर्ण व्योमतल, विश्व चराचर किसी की मिलन-कामना से ग्रह तारक-मंडल के साथ अनन्त साधना कर रहा है। उसी तरह धूलि मस्तक, दीर्घजट वह दीवाना पुरुष पारस-मणि

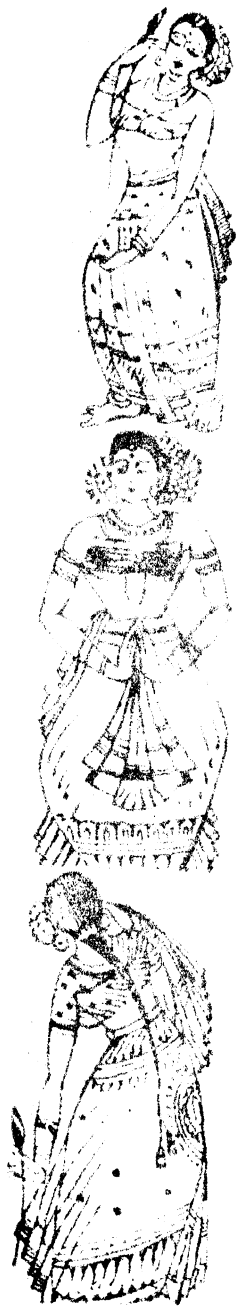

की प्राप्तिहित साधना कर रहा था।

सूर्य पश्चिम दिशा के बादलों में डूब रहा था। आकाश सोने के रंग से रँग गया था। संन्यासी अपने खोये हुए खजाने को फिर से पाने के लिए थके पैरों, पुरातन दीर्घ-पथ पर चल पड़ा। उसके पैरों में सामर्थ्य नहीं थी, देह-भार से कमर झुक गई थी, दिल का दीपक निर्वाण की सीमा पर था और उसकी शिराएँ जड़ समेत उखड़े हुए वृक्ष की तरह सूख गई थीं। फिर भी, वह अपने पद-चिह्नों पर पारस की खोज में जा रहा था।

दिग्दिगन्त में मरुसिकता धू-धू कर रही थी। म्लान रजनी की छाया में वह संन्यासी बैठा था। उसका समग्र जीवन पारस की खोज में बीत गया था। कौन जाने कब उसकी आँख बन्द हो जाय ! किन्तु इन अर्धमग्न प्राणों के साथ एक बार फिर वह पारस-मणि की खोज में चल पड़ा।

वह किसे बुलाकर अपनी कथा कहता ? इस संसार में उसका कोई न था। पथ के भिखारी समान वह दीन-हीन था।

वह आकाश में उड़ना चाहता था, उत्कट प्रतीक्षा से उसके नयनों में निमेष नहीं रहे थे, हू-हू कर अबाध पवन बह रहा था।

सूर्य प्रातःकाल पूर्व गगन के मस्तक पर निकलता। सन्ध्या वेला में चाँद भी धीरे-धीरे निकल आता। अविरल जलराशि कल-कल करती अतल का रहस्य प्रगट करने को आतुर होती, मानो उसे पता था कि इष्ट धन कहाँ था। उसकी भाषा को जो समझता वही इस खोज का पार पा सकता था।

सागर उस महागाथा को अपनी ही भाषा के गीतों में गा रहा था, अपने स्वर को वह आप ही सुनता और समझता था। पारस-मणि का अविरल अन्वेषक पागलों की तरह समुद्र तट पर घूमता रहा।

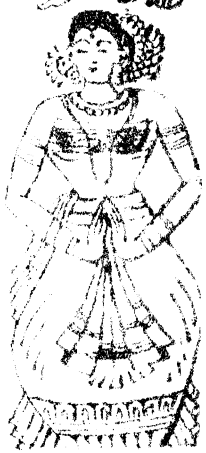

दुःसमय

हे पक्षी, अपने पंख बन्द न कर !

यद्यपि सन्ध्या ने सब गीतों को बन्द करने का संकेत दे दिया है, तेरे साथी विश्राम करने के लिए अपने घोंसलों में चले गए हैं और तू थक गया है !

यद्यपि अन्धकार में भय की धड़कन है और आकाश का चेहरा काले परदे से ढक गया है, फिर भी, हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पंख बन्द न कर !

यह वन के पत्तों का भर-भर शब्द नहीं है, काले नाग के समान उभरते समुद्र की गर्जना है। यह जूही के फूलों का नृत्य नहीं, समुद्र तट के फेन का उभार है।

यह वह हरे वृक्षों वाला तट नहीं है, यहाँ तेरा घोंसला नहीं है। हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पंख बन्द न कर।

तेरे मार्ग में समग्र निर्जन रात्रि है। प्रभात की उषा उन कृष्णकाय पर्वत शिखरों के पीछे मूर्छित सो रही है। आकाश में संत्रस्त-से निर्वाक् तारे श्वासोच्छ्वास का अवरोध कर रात्रि के पहर गिन रहे हैं। और यह थका-हारा चाँद गहरी रात की अथाह झील को तैरकर पार करने का अथक यत्न कर रहा है। हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पंखों को बन्द न कर !

तेरे लिए यहाँ अब न आशा है, न भय है।

तेरे लिए यहाँ अब न शब्द है, न मन्त्रणा है, न सदन है।

तेरे लिए अब न घर है, न विश्राम की छाया है।

तेरे पास अब केवल अपने पंख हैं और यह पथहीन आकाश है।

हे पक्षी, मेरा कहना मान, अपने पंख बन्द मत कर !

ऐश्वर्य

तरुतल के क्षुद्र तृण भी अपने स्थान पर सरल माहात्म्य के साथ सहज ही रहते हैं। पूर्व का नवसूर्य और अर्ध-रात्रि का चाँद भी उन क्षुद्र तृणों के संग मिल-जुलकर एक ही आसन पर समभाव से विराजते हैं।

इसी प्रकार मेरे क्षुद्र गीत भी विश्व-गीतों के साथ मिल गए हैं। श्रावण के धारापात वनवृक्षों के पत्तों की मरमर-ध्वनि के साथ उन गीतों का गुञ्जन एकाकार हो गया है।

किन्तु, हे विलासी ! संसारी ऐश्वर्य-भार से बन्द दरवाजों में तू अकेला ही रह गया है। सूर्य की स्वर्णिम आभा और गीतमय चन्द्र की मधुर चाँदनी के नित्य आशीर्वाद से तू वंचित ही रह गया है।

सम्मुख ही मृत्यु का मुहूर्त्त खड़ा है, उसके सामने तेरा ऐश्वर्य पांशुपाण्डु, शीर्ण, म्लान और मिथ्या होता जा रहा है।

चिरायमना

जैसी है वैसी ही आ जा, शृंगार में व्यर्थ समय न खो।

कदाचित् तेरे केश-कुन्तल निर्बन्ध हो गए हैं, मध्य-रेखा विशृंखल है, परिधान अस्त-व्यस्त है, तो भी संकोच न कर, जैसी है वैसी ही आ जा, शृंगार में व्यर्थ समय न खो।

दूर्वादल पर अधीर पग रखती चली आ। तुषार-कणों से तेरे चरणों की महावर घुल जाए, नूपुर के बन्ध शिथिल हो जायें, कंठहार के मुक्ता-माणिक बिखर जायें तो भी संकोच न कर, दूर्वादल पर अधीर गति से पग रखती चली आ।

क्या तू नहीं देखती, विशाल व्योम में सघन मेघ-माला घिर आई है, नदी कछार से हंसों की टोलियां नील गगन में विहार करने उड़ चली हैं, प्रभात के बिछुड़े गोवत्स अपने घरों की ओर आतुरता से लौट रहे हैं, व्योम में सघन मेघमाला घिर आई है !

तेरे शयन कक्ष का दीप बुझा जा रहा है, इसकी शिप्रा पवन के प्रहारों से चंचल हो रही है। कौन कह सकता है तेरी आँखों में काजल नहीं लगा, वे श्याम मेघों से भी अधिक श्यामल हैं।

जैसी है वैसी ही आ जा, शृंगार में व्यर्थ समय न खो।

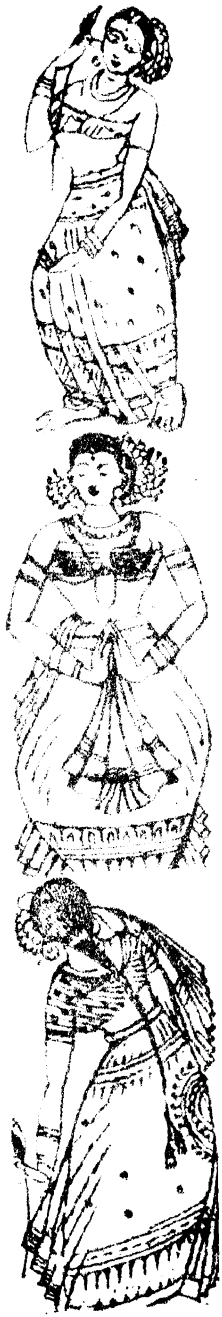

कृतार्थ

दिन की कुछ घड़ियाँ अभी शेष हैं; नदी-तट का मेला समाप्त होने ही वाला है। अब केवल आषाढ़ मेघ का अन्धकार ही मेले में शेष रह गया है।

मुझे भय हुआ कि मेरा समय भी व्यर्थ ही गया और धन भी। मेरी जेब की अन्तिम कौड़ी भी खर्च हो चुकी, मैं लुट गया।

किन्तु, नहीं बन्धु, अब भी मेरे पास कुछ शेष है, मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नहीं लूट लिया।

मेरे भाग्य का जितना क्रय-विक्रय था, सब हो चुका। जितना देना-पावना था सब चुक गया।

प्रहरी द्वार नहीं खोलेगा यदि उसे कुछ न मिलेगा।

चिन्ता नहीं, अब भी मेरे पास कुछ शेष है, मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नहीं छीन लिया।

सहमी हुई हवा आने वाली तूफानी आँधी का संकेत दे रही है; सहसा पश्चिम में उमड़ते बादल गम्भीर घोष के साथ आकाश में छा रहे हैं।

प्रशान्त जल में आँधी की प्रतीक्षा निहित है। मैं वेग से नदी पार करता हूँ, इस डर से कि कहीं रात्रि का अन्धकार न छा जाय।

माँझी, अपनी मजदूरी की चिन्ता न कर, मेरे पास अब भी कुछ बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नहीं छीन लिया।

धान के खेतों में से टेढ़ा-मेढ़ा ग्राम-पथ गया है।

वृष्टि से कुटी-द्वार पर पानी भरा है। बादल थम गए हैं। एक बार फिर आगे बढ़ने का विचार किया। किन्तु दूकान वाला मूल्य माँगता है।···भय नहीं, अब भी मेरे पास कुछ शेष है।

मार्ग के एक ओर वृक्ष के नीचे एक भिखारी बैठा है। वह कातर आँखों से मेरी ओर देख रहा है। उसका विश्वास है कि मैं दिन-भर के बेचान से मिले अपार लाभ के साथ लौट रहा हूँ।

हाँ, मेरे बन्धु, मेरे पास अब भी कुछ बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नहीं छीन लिया।

रजनी अन्धकारमयी है, ग्राम-पथ निर्जन है, जुगनू घने पत्तों में झिलमिला रहे हैं।

तू कौन है जो दबे पाँव मेरा पीछा कर रहा है ?

आह, तू मुझसे मेरा धन छीनना चाहता है ? शंका न कर, मैं तुझे निराश नहीं करूँगा, क्योंकि अब भी मेरे पास कुछ धन शेष बचा है, मेरे भाग्य ने मेरा सर्वस्व मुझसे नहीं छीना।

दो प्रहर रात बिताने के बाद मैं घर पहुँचा। मेरे दोनों हाथ रिक्त थे।

तुम्हीं एक सजल-नयन द्वार पर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। तुम्हारी आँखों में नींद नहीं, मुख पर शब्द नहीं। भयभीत पक्षी की तरह तुम मेरी भुजाओं में बँध गईं, मेरे वक्ष से लग गईं।

धन्य परमदेव, धन्य हो तुम, अब भी मेरे पास कितना शेष है! मेरे भाग्य ने मुझसे मेरा सर्वस्व नहीं छीन लिया।

मन्दिर

कठिन तपस्या के बाद मैंने मन्दिर बनाया था। उसके न द्वार थे न वातायन, उसकी दीवारें भारी शिलाओं से बनी थीं। सब ओर अन्धकार-ही-अन्धकार था।

मैं संसार के सब कर्त्तव्य-कर्म भूलकर स्वयं प्रस्थापित मूर्ति की ओर एकाग्र अपलक देख रहा था। अन्तहीन रात्रि मैंने वहीं बिता दी, शतगन्धमय धूप-अगुरु जलाए।

मन्दिर के अन्तराल में सदा अन्धकार रहता था, जहाँ सुवासित तेल का दीपक टिमटिमाया करता था।

प्रज्वलित सुरति धूप-धूम्र के अस्खलित धुएँ के घने बादलों ने मेरे हृदय पर आघात किया।

अनिद्रित रहकर मैंने मन्दिर की दीवारों पर बहुत सी विलक्षण स्वप्नमय, चमत्कारपूर्ण रेखाकृतियाँ अंकित कर दीं। पङ्खदार घोड़े, पुरुषाकृति के पुष्प, सर्पाकृति की स्त्रियाँ, इसी तरह कितने ही वर्णनातीत चित्र चारों भित्तियों पर बनाए।

मन्दिर की भित्तियों में एक भी झरोखा ऐसा नहीं रहा, जहाँ से पक्षियों का गीत, पत्तों का मर्मर शब्द, ग्रामीणों की पद-ध्वनि प्रवेश कर सकती।

उस अँधेरे गोपुर में केवल एक ही ध्वनि प्रतिध्वनित हो रही थी, वह थी विविध रूपों, विविध छन्दों में गुँथे और दिवस-रात्रि गुंजरित मन्त्र।

इसी तरह कितने ही दिन बीत गए। कोई जान न पाया कि मैं अपने ही में डूबा था। जब जागा तो पाया

मेरा मन ऊर्ध्वमुखी अग्निशिखा के समान तीव्र और प्रखर था और मेरी चेतना आत्मानन्द में मूर्च्छित-सी थी।

एक दिन एक विषम घोर स्वर सुना।

मेरी मूर्च्छना तभी टूटी जब विद्युत्-रूपी पाषाण ने मन्दिर पर प्रहार किया और एक तीव्र पीड़ा ने मेरे हृदय को डस लिया।

दीपक लज्जित होकर मन्द पड़ गया, दीवार के चित्र शृङ्खला में गुँथे स्वप्नों की तरह उस मन्द प्रकाश में निरुद्देश्य झाँकने लगे, मानो वे कहीं अदृश्य होने का मार्ग ढूंढ रहे थे।

मैंने यज्ञ की वेदी पर स्थापित मूर्ति को देखा, वह प्रभु के स्पर्श से जीवित-सी मुस्करा रही थी। जिस रात्रि के अन्धकार को मैंने दीवारों में बाँधा था वह पंख फैलाकर उड़ गया था।

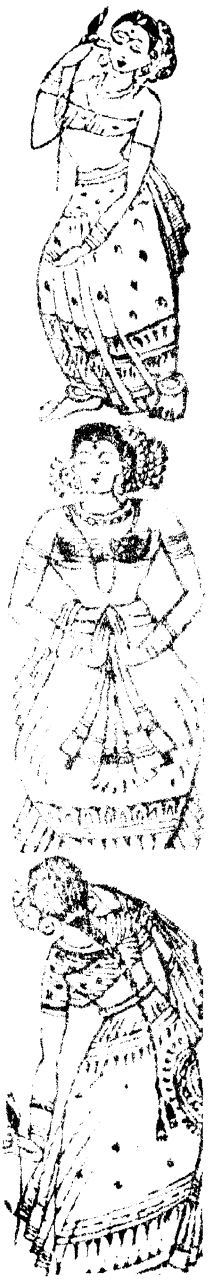

माता वसुन्धरा

मेरी सर्वसहा, श्यामला, मृणमयी माँ वसुन्धरा, मैं तुझ दीन धरिणी की दरिद्र सन्तान हूँ, जो जन्मावधि सुख-दुःख भार से दबी रहती है।

तू अपनी सन्तान की भूख मिटाने का निरन्तर यत्न करती है, किन्तु तेरे पास अक्षय भोजन नहीं है, तेरे हाथ में असीम ऐश्वर्य-राशि नहीं।

तू हमारे लिए जिस आनन्द को बटोरती है वह अ-सम्पूर्ण है। जो कुछ खिलौने हमारे लिए बनाती है वे टूट-फूट जाते हैं। तू हमारी सब भूखी तृष्णाओं को शान्त नहीं कर सकती। तेरी म्लान, क्षुधा-पीड़ित सन्तान 'हाय अन्न, हाय अन्न', कह रो उठती है।

सब पर मृत्यु की भयंकर छाया पड़ी है, सब आशाएँ क्षणजीवी हैं, किन्तु क्या इसीसे तेरे कठोर हृदय की ममता छोड़ दूँ ?

हे धरित्री, तेरी वेदना-कातर, सकरुण हँसी देखकर मेरे अन्तराल में अमित व्यथा जाग उठती है।

तूने अपने वक्ष से सन्तान को रस-रक्त दिया है, अमरता नहीं दी, इसीलिए अहर्निशि तेरी आँखें अनन्त स्नेह से सन्तान के लिए जागरूक रहती हैं।

युग-युग से तू गीतों और रंगों से आनन्द आवास का सृजन कर रही है, किन्तु अभी तक तेरा कार्य पूरा नहीं हुआ। दिवस-रात्रि स्वर्ग नहीं बने। केवल उसकी झलक-सी उनमें चित्रित हो सकी है।

तेरी सौन्दर्य-रचनाओं में अश्रुओं का अभ्र छा गया है।

तभी तेरा मुख विषादमय किन्तु कोमल है। तेरे सकल सौन्दर्य में अश्रुजल भरा है।

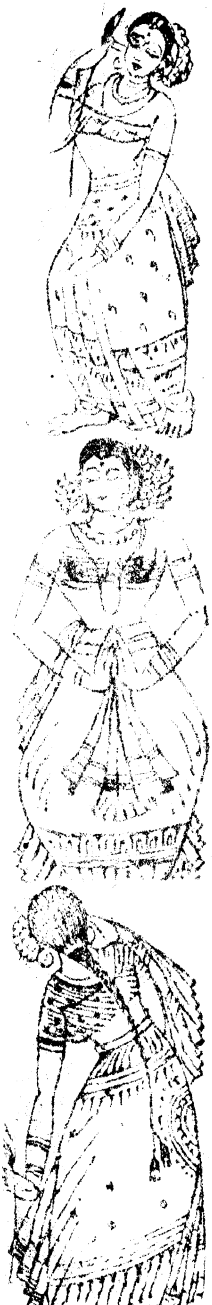

झरना

वह बाजरे के खेत के पास वाली टेकली पर रहती थी। उसकी झोंपड़ी को छूता हुआ एक झरना बहता था जो एक पुराने वट-वृक्ष की घनी छाया में से गुज़रता था। गाँव की औरतें वहाँ अपने कलश भरने आती थीं और मार्ग के पथिक वहाँ कुछ देर विश्राम करने ठहर जाते थे।

वह वहाँ झरने के बुदबुदों के समान ही दिन-भर काम करती और अपने सपने लेती रहती थी।

एक दिन शाम को एक अजनबी पर्वत के मेघों से ढके शिखर के पीछे से आया। उसके केश-गुच्छ साँप की कुण्डली के समान गुँथे हुए थे।

हमने आश्चर्य से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

वह बिना कुछ कहे उस झरने के पास बैठ अनिमष नेत्रों से उस झोंपड़ी को देखने लगा, जहाँ वह रहती थी। हमारे दिल डर से काँप उठे। रात होने पर हम चुपचाप लौट गए।

अगले दिन सुबह जब औरतें झरने पर देवदार वृक्षों के पास पानी भरने गईं तो उन्होंने देखा, कुटी का द्वार खुला था, किन्तु उसकी आवाज़ नहीं आ रही थी; उसका मुस्काता चेहरा भी वहाँ नहीं था। फर्श पर खाली सुराही पड़ी थी और उसका दीपक जलकर बुझ गया था। किसी को पता नहीं था, वह सुबह होने से पहले ही कहाँ चली गई थी। अजनबी भी चला गया था।

बैसाख मास में सूर्य की गरमी से बरफ़ पिघलने लगी

थी और हम झरने के पास बैठे शोक मना रहे थे।

हम मन-ही-मन आश्चर्य कर रहे थे कि 'क्या उस प्रदेश में भी, जहाँ वह गई है, कोई ऐसा झरना होगा जहाँ वह इन शुष्क, उष्ण दिनों में अपना घड़ा भर सकेगी ?' निराशा-भरे शब्दों में हम एक-दूसरे से पूछ रहे थे, 'क्या इस पर्वत-शिखा की ओट में भी कोई गाँव हो सकता है ?'

जेठ की रात थी, दक्षिण दिशा का पवन वेग से बह रहा था, मैं उसकी निर्जन कुटी में—जहाँ जलकर बुझा हुआ दीपक अब भी वैसा पड़ा था—अकेला बैठा था। इसी समय मेरी आँखों के सामने अचानक ही, पर्वत-शिखरों का परदा हट गया और मैं कह उठा, 'आह, यह तो वही लड़की है जो आ रही है। कहो, कुशल तो है बेटी ? किन्तु अब किस कुटी का आश्रय लोगी, और अब हमारा वह झरना भी तो नहीं है।'

वह बोली, 'यहाँ भी वही मुक्त आकाश है, केवल इसकी परिधि के पर्वतों की बाढ़ नहीं है; यहाँ भी वही जल-धारा है जो नदी में बदल गई है और यहाँ भी वही घाटी है जो खेतों के रूप में फैल गई है।'

मैंने आह भरते हुए कहा, 'सब-कुछ है यहाँ, केवल हम नहीं हैं।'

उसने उदासी से हँसते हुए उत्तर दिया, 'तुम मेरे हृदय में हो।'

मैं उठ खड़ा हुआ, मैंने सुना, वह झरना अब भी कल-कल करता बह रहा था और देवदार के पत्तों से छनकर मर्मर ध्वनि आ रही थी।

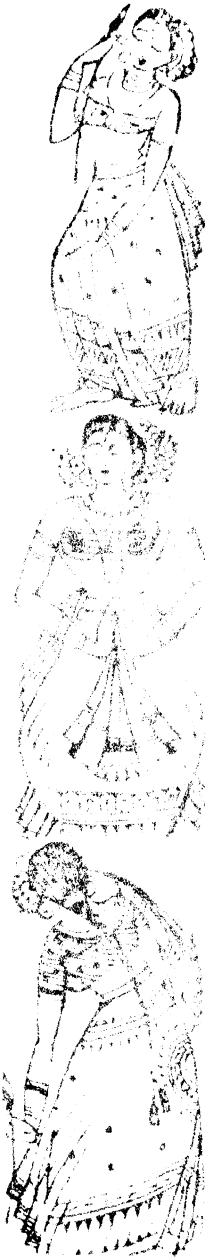

प्रस्तर-मूर्ति

हे निर्वाक् पाषाण सुन्दरी, तू कितने सहस्र वर्षों से दिवारात्रि इसी भाँति चिर-एकाकिनी, अनासक्ता, अनश्वरा और स्वकीय सौन्दर्य-प्रसाधनरत रमणी की भाँति अविचल स्थिर भाव से इस शिलाखण्ड पर प्रतिष्ठित है !

संसार का कोलाहल तुम पर आघात करने में निष्फल रहता है। जगत् के जन्म-मृत्यु, दुःख-सुख, अस्त-उदय से तू अस्पृश्य और काल की गति से उदासीन रहती है।

तेरे चरणों में झुका महाकाल मुग्ध नेत्रों से रात-दिन गरज-गरजकर कह रहा है :

अपना मौन भंग करो प्रियतमे ! अचलप्रतिष्ठ मौन वधू, अपने अधर खोलो और कुछ बोलो !

दीदी

पश्चिम प्रदेश का एक मजदूर और उसकी पत्नी मिट्टी को ईंटें बनाने के लिए जमीन में गर्त्त खोद रहे थे।

उनकी कन्या नदी-तट के घाट पर आती-जाती और दिन-भर अपने बरतन, थाली, कटोरा माँजती। उसके पीतल के कंकण पीतल की थाली से टकराते और ठन-ठन बज उठते। इसी तरह वह सारा दिन व्यस्त रहती।

उसका नाटा-नंगा छोटा भाई भी उसके पीछे जाता और तट के पास की टेकली पर बड़े स्थिर धैर्य से बैठकर वह अपनी बहन के आदेश की प्रतीक्षा करता रहता।

थोड़ी देर बाद भरी गागर को सिर पर टेक, वामकक्ष में थाली और दायें हाथ से भाई को उठा, वह कर्म-भार से दबी नन्ही-सी दीदी घर की ओर चल पड़ी।

एक दिन·····

उसका नंगा, भूखा भाई जमीन पर लेटा था और घाट पर बैठी बहन अपनी गागर मिट्टी से माँज रही थी।

पास ही नदी-तीर पर एक मुलायम-मुलायम बालों वाला मेमना घास चर रहा था। थोड़ी देर में वह धीमे-धीमे बच्चे के पास आ गया और बच्चे की ओर देख-देख मिमियाने लगा। छोटा भाई उसे देखकर चौंक उठा और चिल्ला पड़ा।

उसकी बहन गागर माँजना छोड़कर दौड़ी आई।

आकर उसने एक कक्ष में भाई को उठाया, दूसरे में

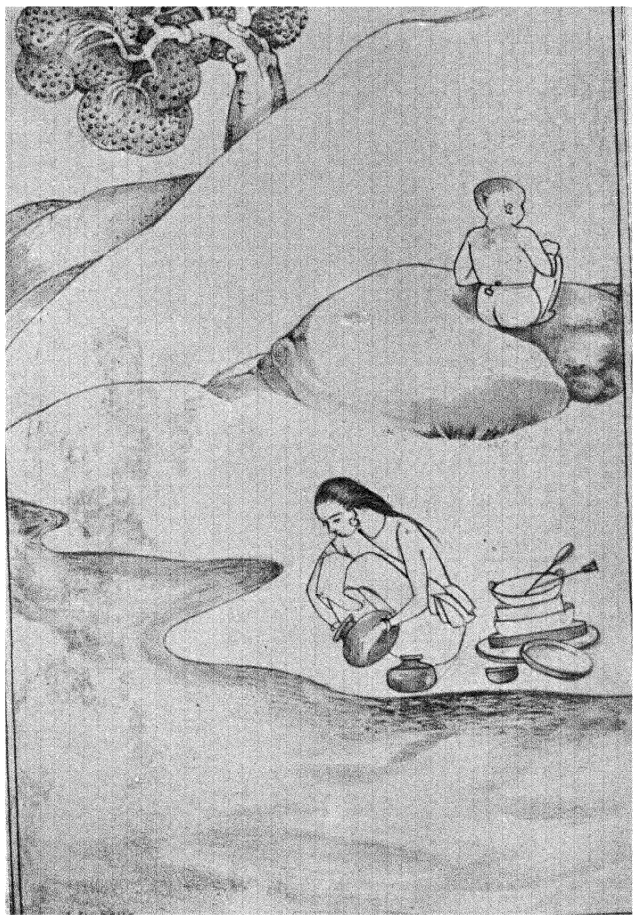

बकरी के मेमने को। दोनों को एक समान सोहाग बाँट दिया और घर की ओर लौट पड़ी। नर-शिशु और पशु-शिशु दोनों एक ही सूत्र में बँधे थे; उस नन्ही दादी की गोद में सुख से बैठे थे।

भयभीत

सुन्दरी, तू अपने नयनों के एक कटाक्ष से नायक की वीणा से निःसृत गीतों का सम्पूर्ण धन लूट सकती है। किन्तु, उनकी स्तुति सुनने के लिए तेरे पास कान नहीं हैं, इसीलिए मैं तुम्हारी स्तुति करने आया हूँ।

तू अपने चरणों के आगे संसार के अभिमानी मस्तकों को क्षण-भर में झुका सकती है, किन्तु तू संसार को छोड़-कर एक अज्ञात शिशु की पूजा में रत रहती है, इस कारण मैं तेरा आदर करता हूँ, तेरी वन्दना करता हूँ।

तू अपने हाथों के स्पर्श से राजमहलों की शोभा को अमर बना सकती है, किन्तु, उन्हीं हाथों से तू घर को साफ करने और धूल-धूसरित बालक के साथ खेलने में व्यस्त रहती है, इसीलिए मैं तेरी तेजस्विता से चकाचौंध हो जाता हूँ, भय-त्रस्त तेरी पूजा करता हूँ।

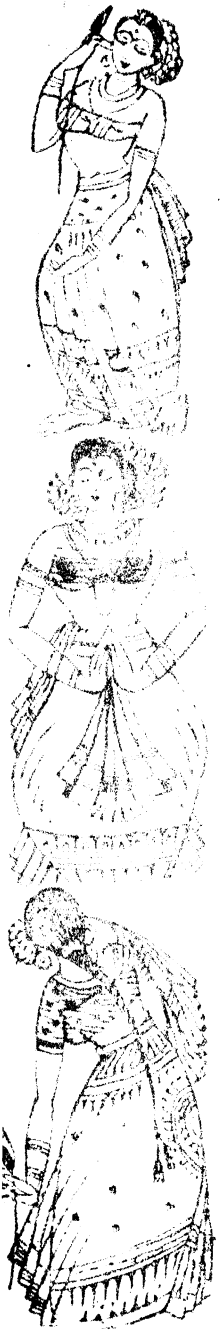

वैराग्य

गहन गम्भीर रात को एक वैरागी ने सोचा—बस, अब गृह-परित्याग कर प्रभु की खोज में जाऊँगा। इस ममता में न जाने किसने अभी तक मुझे बाँध रखा था ?

प्रभु ने धीमे से कहा, 'मैंने'।

किन्तु वैरागी के कानों ने नहीं सुना।

उसकी पत्नी शिशु को वक्ष से लगाए शय्या के एक छोर पर सो रही थी।

वैरागी ने मन-ही-मन प्रश्न किया—न जाने अभी तक किसने मेरी आँखों पर माया का आवरण डाल रखा था ?

प्रभु ने कहा, 'मैंने'।

किन्तु वैरागी ने नहीं सुना।

वैरागी शय्या छोड़कर खड़ा हो गया और बोला, 'प्रभु, तुम कहाँ हो ?'

प्रभु ने कहा, 'यहाँ।'

किन्तु वैरागी ने ये शब्द भी नहीं सुने।

स्वप्न में रोता हुआ अबोध शिशु अपनी माता की छाती से चिपट गया।

प्रभु ने कहा, 'लौट आ।'

किन्तु वैरागी ने प्रभु-वाणी न सुनी।

प्रभु ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा, 'मेरा सेवक मेरी ही खोज में मुझे छोड़कर कहाँ जा रहा है ?'

सुख-दुःख

मन्दिर के सामने तीर्थ का मेला लगा हुआ था।

प्रभात से गहन वर्षा हो चुकी थी, दिन ढल गया था।

उस आनन्दोल्लसित जनसमूह में आज वह लड़की सर्वाधिक प्रसन्न और विभोर थी; वह एक पैसे में तालपत्र की बंसी खरीद लाई थी।

पत्ते की उस बंसी का आनन्द-स्वर अन्य सब हर्ष-ध्वनियों से ऊँचा सुनाई देता था।

ठाकुरबाड़ी में अपार जनसमूह उमड़ पड़ा था, कन्धे-से-कन्धा छू रहा था, अविश्रान्त वृष्टि से मार्ग में कीचड़ भर गया था। सारे खेत जल में डूब गए थे।

किन्तु, इन सबकी अपेक्षा सबसे तीव्र दुःख उस बालक की कातर आँखों में झलक रहा था जो दूकान के पास खड़ा था, लेकिन जिसके पास मिठाई की रंगीन गोलियाँ खरीदने को एक भी पैसा न था।

दूकान के सामने एकटक कातर दृष्टि से देखती हुई उसकी करुण आँखों ने उस मेले को बहुत करुण बना दिया था।

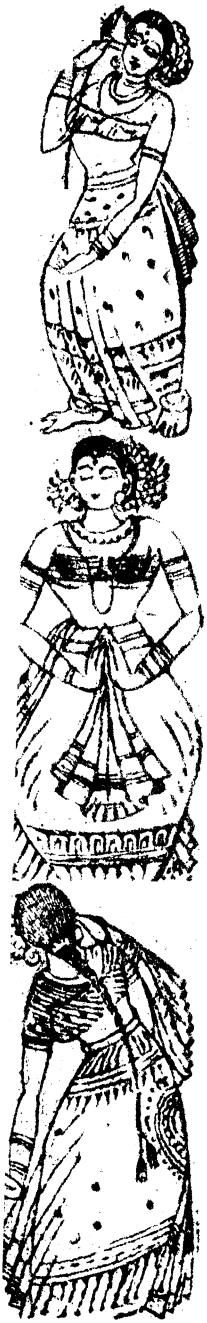

मरण-खेल

मेरी प्राण प्रेयसी, आ, निशीथ-वेला में हम मृत्यु का खेल खेलेंगे।

आकाश में अँधेरा है, सघन मेघों का जमघट है। लहरें समुद्र में चारों ओर उमड़ रही हैं। भवतरंग में ज्वार आया है। हम स्वप्न-शयन छोड़ बाहर आ गए हैं।

पवन में, गगन में, सागर में, आज कौनसा किल्लोल है जो डोल रहा है! चारों ओर से अट्टहास उठ रहा है। आकाश-पाताल उन्मत्त हो उठे हैं।

आज मेरी प्रेयसी जागकर हृदय से लग गई। उसका थका-थका हृदय काँप रहा है। उसे उसने मेरे वक्ष पर रख दिया। देर तक इस निबिड़ बन्धन-सुख में मेरा हृदय नाच उठा। इस त्रास-भरे उल्लास में उसके प्राण व्याकुल हो उठे। मैंने उसे निशि-दिन, अतिशय अनुराग-भरे मृदु वचनों में आश्वासन दिया, उसके लिए पुष्प-शय्या बनाई और उसे गुप्त रखने के लिए यत्नपूर्वक द्वार बन्द कर दिए।

सोहाग के लिए मैंने स्नेह से उसके नयनों का चुम्बन किया और उसके मस्तक को हाथों में रख कानों में प्रिय मृदु-मधुर गुंजन करता रहा।

अन्त में वह सुख-शयन में श्रान्त हो अलसाई-सी मधुरता के अनन्त कोहरे में डूब गई। मेरे स्पर्श का भी उसे आभास नहीं होता था, कुसुम-हार भी उसे भारी लगते थे, निद्रा-जागरण निशि-दिवस एकाकार हो गए।

मेरे गीत भी उसे जगा नहीं पाते थे।

आज रात्रि-वेला में हम मृत्यु का नूतन खेल खेलेंगे; मरण-झूले में बैठकर झूलेंगे। झंझावात अट्टहास करेगा और हम दोनों अपने प्राणों से झूले का खेल खेलते रहेंगे।

डुलाओ, हमें और भी जोर से डुलाओ, हे महासागर के तूफान, हमारे वक्ष-शोणित में हिल्लोल उठ रहा है, प्रेयसी के कुन्तल हवा में उड़ रहे हैं, उसका आँचल, उसकी पुष्पमाला आँधी में फड़फड़ा रहे हैं। उसके कंगन उन्मत्त-से हो बज रहे हैं। डुलाओ, हमें और भी जोर से डुलाओ !

झंझा ने हमारे सब आवरण दूर कर दिए, सब अवगुण्ठन खोल दिए। प्राणप्रिया के सामने मैं निरावरण हो गया, हम दोनों आमने-सामने मुक्त भाव से आ गए। अधर से अधर, वक्ष से वक्ष का स्पर्श हुआ। हमारा पागल-सा स्वप्न आज फूटकर बाहर आ रहा है।

यदि दिन-भर के श्रम से थका मैं घर में भी काम में व्यस्त होऊँ तो तुम मेरे सब काम भंग कर देना, मेरी लज्जा हर लेना और यदि सब सपने भूल प्रगाढ़ निद्रा में डूबा होऊँ और हृदय में अवसाद भर अर्द्ध-जागरूक नयनों से लेटा होऊँ तो अपने शंख पर तुमुल नाद करते हुए और प्रलय-श्वास भरकर प्रचण्ड घोष के साथ आना, मुझे इस अवसाद से मुक्ति देना !

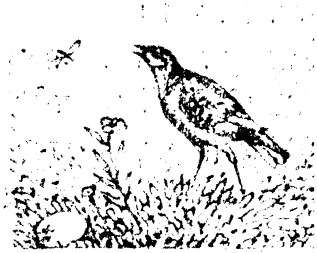

शत वर्ष उपरान्त

आज शत वर्ष उपरान्त

कौतूहल-भरी तरुणी, क्या ढूँढ़ रही हो मेरे काव्य में ?

नव वसन्त के प्रभाती आनन्द की एक भी सिहरन, एक भी फूल, विहंग का एक भी अनुराग-सिक्त गीत तेरे पास भेजने में असमर्थ हूँ मैं।

तब भी तुम आज शतवर्ष उपरान्त घर का दक्षिण द्वार खोलकर वातायन में बैठी मेरा काव्य लेकर सुदूर दिगन्त में कल्पनाओं का अवगाहन कर रही हो ।

एक दिन, शत वर्ष पूर्व

चंचल पुलक राशि चमकी थी स्वर्गपुरी में ।

फाल्गुन का नव दिन था वह, और बन्धनहीन, उन्मत्त अधीर नवपल्लवों को चंचल कर, पुष्प-पराग-भरा दक्षिण समीर यौवन के राग गाता बहा था ।

उस दिन एक पागल दिल का कवि जाग रहा था। उसके कितने ही पुष्प, असीम अनुराग में विकास पाने को आतुर हो उठे थे।

किन्तु आज, शत वर्ष उपरान्त

वैसे गीत गानेवाला कौनसा नूतन कवि तुम्हारे घर आया है ?

आज वसन्त के दिन मैं उसके लिए आनन्द पथ से अभिवादन भेजता हूँ।

मेरा वसन्त गीत तेरे वसन्त दिन पर क्षण-भर को तेरे हृदय-स्पन्दन में ध्वनित हो जाय तरुणी, यही कामना है मेरी आज, शत वर्ष उपरान्त ।